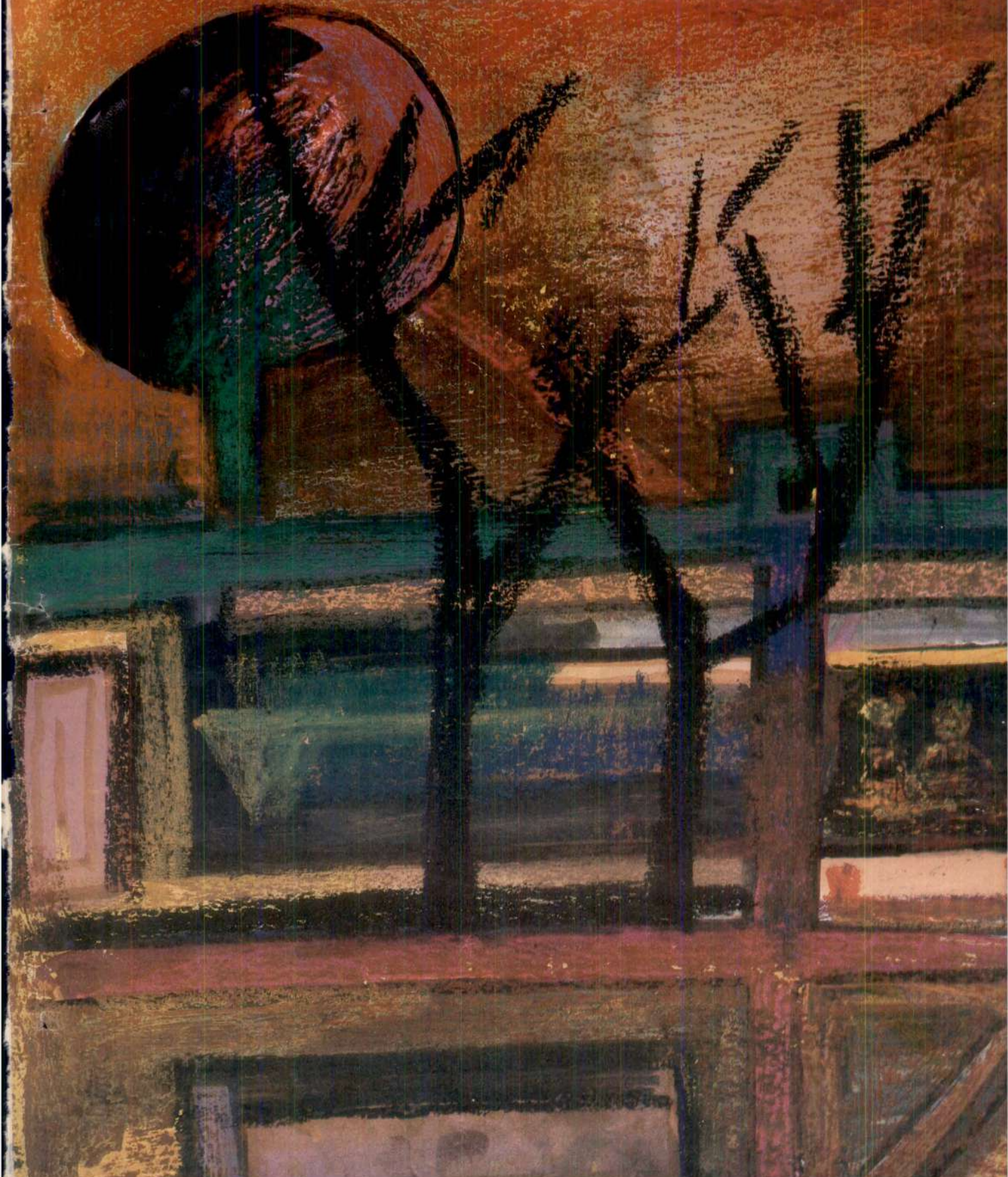


अप्रैल 1991

मूल्य तीन रुपये

आजकल



जंग

डा. शशिश शर्मा

जब उसकी बर्दी पर तमगा लगा था
उसकी मूँछें कुछ तन गई थीं
आंखों में उभर आई थी नमी
उस दिन
जब स्टेनगन थामे
उसकी बगल के सिपाही ने
कमीज से एक धागा निकाल कर
ताबीज चूम लिया था
और कुछ बड़बड़ाता हुआ
हत्थे पर उसका सिर
लुढ़क गया था—

जेब से उसकी एक फोटो निकली थी
फोटो में एक बच्चा था—
एक खूबसूरत औरत थी—
उसकी पूरी जिन्दगी
उसकी जेब में थी/जिसे वह
खिलौने और रसोईघर से उठाकर
सरहद तक ले आया था—

नींव के पत्थर सा/वह सिपाही
दफना दिया गया था/वहीं
एक खंदक में
एक याद के साथ/जो
उस बच्चे के होंठों पर
मुस्कराहट की जगह ताउम्र
बर्फ सी जमी रहेगी—

वह बर्फ—उस औरत की आंखों में
सावन की गर्मी सी
यूं ही टप्-टप्
हर साल पिघलती रहेगी
कोई नहीं जान पाएगा
बिस्तर पर पसरी
सलवटी चादर का दर्द—
खामोश कलाइयों पर
कभी न खनकने वाली चूड़ियों की
खामोश चीख
कोई नहीं जान पाएगा—
हर साल यूं ही बर्दियों पर
तमगे लगते रहेंगे
भूलते रहेंगे लोग—
दीवारों के कंधों पर टिका
देहरी का दर्द
कोई नहीं जान पाएगा। □

75, गौतम अपार्टमेन्ट
गौतम नगर, नई दिल्ली-110049





आजकल

आधुनिक साहित्य
एवं
संस्कृति का संवाहक मासिक

वर्ष : 46; अंक : 12; पूर्णांक : 560;
अप्रैल : 1991 (चैत्र-वैशाख, 1913)

सम्पादक
सुरेश चन्द्र शर्मा

सहायक सम्पादक
प्रवीण उपाध्याय

उप-सम्पादक
विजय कुमार

व्यापार व्यवस्थापक
: जसवंत सिंह
सहायक व्यापार व्यवस्थापक
: शकुन्तला
आवरण सज्जा
: एम. एम. मलिक

रचना - क्रम

2. प्रतिक्रियाएं

3. सम्पादकीय : अंतर्राष्ट्रीय कला मेला

लेख :

- | | |
|--|-------------------------------------|
| 4. आंखों देखा भारत | प्योतर बारान्निकोव |
| 8. लोकशक्ति की कविता :
दलित कविता | पुरुषोत्तम सत्यप्रेमी
डा. हरदयाल |
| 11. अमृतलाल नागर का हंसगीत | |
| 15. मूर्ति शिल्पकार :
राम किंकर वैज | प्रेम कृष्ण टंडन |
| 30. प्रखर आलोचक
श्री कृष्णानन्द गुप्त | जगदीश प्रसाद चतुर्वेदी |
| 35. प्राचीन गौरवस्थली : कांपित्य | डा. योगेन्द्र नाथ चतुर्वेदी |

कहानियां :

18. चिड़ियाएं यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र'

26. कर्ज

33. रेशमी साड़ी

38. देवी देवता (लघुकथा)

पूर्वा श्रीवास्तव

यर्रिमिल्लि विजयलक्ष्मी

डा. सुरेश चन्द्र गुप्त

21. कविताएं :

आवरण पृष्ठ 2 पर डा. शशि शर्मा
सिद्धनाथ सागर, अरविन्द बेलवाल, स्नेहलता
चट्टोपाध्याय, श्रीकान्त जोशी, रतीनाथ योगेश्वर,
दुर्गाशंकर त्रिवेदी, विभा जोशी, आर. एस. रमन,
सुखवीर विश्वकर्मा, रमेश चन्द्र पंत, आर. के. नीरद,
चन्द्रप्रभा सारस्वत।

इसके अतिरिक्त पुस्तक समीक्षा, वातायन और रंगमंच
आदि नियमित स्तंभ।

सम्पादकीय पत्र-व्यवहार : सम्पादक 'आजकल' (हिन्दी),
प्रकाशन विभाग, पटियाला हाउस, नई दिल्ली-110001
दूरभाष : 387069



‘उत्तरी पूर्वी राज्यों में हिन्दी’ डा. प्रशांत वेदालंकार द्वारा लिखित लेख में मेरी जानकारी के अनुसार एक गलती है। उन्होंने लिखा है कि मेघालय, नागालैंड एवं मिजोरम के लिए नार्थ ईस्टर्न हिल यूनिवर्सिटी शिलांग एकमात्र विश्वविद्यालय है। जब कि नागालैंड में नागालैंड केन्द्रीय विश्वविद्यालय, लुभांनी है।

इस अंक में आयोजित परिचर्चा रोचक, ज्ञानवर्द्धक एवं सटीक महसूस। हरिवंश राय बच्चन पर उठाए गए प्रश्नों का सबसे उपयुक्त उत्तर डा. श्याम सुंदर घोष का प्रतीत हुआ। □

अमरेन्द्र नाथ 'अरुण', रामनगर, ढोली,
मुजफ्फरपुर-5 (बिहार)

सम्पादकीय के अंतर्गत, जनवरी अंक में आपकी वैचारिक टिप्पणी "कहीं वह (कविता) स्वयं ही तो इस मार्ग से भटक नहीं गई है?" सवालिया होते हुए, जिसका उत्तर 'हां' या 'नहीं' में भी हो सकता है किन्तु कविता की ताजातरीन स्थिति को देखते सामूहिकता की जमीन पर खड़े होकर दावे के साथ कहा जा सकता है कि कविता के साथ यह स्थिति यकीनन है। जिसके जिम्मेदार सिर्फ कलमकार हैं। कविता एक साधना है और यह साधना निरंतर मरती जा रही है। कारण चाहे जो भी हों। व्यक्तिगत रूप से मैं यह मानता हूँ कि रचनाकार अपने समय का ईमान होता है अपने युग का स्पंदन। उसकी संवेदना आज कुंठित हो गई है जिससे उबर सकने की स्थिति भी फिलहाल नजर नहीं आती। साहित्य की 'शाश्वत' संजीवनी सूख रही है और हमारे रचनाकार बंधु, अपने मद में चूर परस्पर एक-दूसरे का मुंह ताक रहे हैं। यह मुंह ताकने की स्थिति कविता-साहित्य-संदर्भ में सांघातिक है। अपनी ही दो पंक्तियाँ एक शिकायती प्रणाम रूप में रचनाकारों के नाम निवेदित हैं: लुटे कारवां का वो सरदार निकला—कबीले का कातिल कलमकार निकला। नवें दशक की कविता पर डा. वेद प्रकाश अमिताभ का बहुआयामी आलेख, 'नये कवियों से गपशप—।' के अंतर्गत अलेक्सान्द्र सेंकेविच के धारदार विचार, कविवर बच्चन संदर्भ में परिचर्चा से बहुत ही बेशकीमत जानकारीयाँ मिलीं। बालक-मन में पैठ कर लिखा गया डॉ. रामदरश मिश्र का 'सांचा' पोर-पोर बांधता है। डा. गुरबचन सिंह, अशोक आन्द्रे, विभाकर की रचनाएँ जहाँ मन को जोड़ती हुई लगती हैं वहीं रामेश्वर शुक्ल अंचल की कविता आसमानी लगने के कारण जमीन से नहीं जुड़ सकी है। अतः विचार-प्रवाह को छोड़ गई है। 'आँखों में आसमान' पर सुरेन्द्र कुमार की समीक्षा 'जयशंकर प्रसाद' कृति पर डा. मृत्युंजय उपाध्याय की समीक्षा विधा के हिसाब से बहुपठित लगती है। □

मधुर नज्मी, हफीज कालोनी, आदर्श नगर,
मुहम्मदाबाद, गोहना, मऊ (उत्तर प्रदेश)

‘आजकल’ का दिसम्बर अंक मिला। 'दुःस्वप्न' के एक-एक शब्द मंत्रवत लगे 'संस्कृतियों का सेतु: आक्तोवियो पाज' जैसे सम्पादकीय से मैं मंत्र-मुग्ध हो गया।

सरकारी प्रकाशन में भी दूरदृष्टि सम्पन्न रचनात्मक मेधा वाले सम्पादक हैं। यह जानकर आल्हादित हुआ। लेखकों को सेतु सदृश होना चाहिए। सम्पादकों को उनका मार्गदर्शक होना चाहिए। 'आजकल' ने वस्तुतः इसी सम्पादकीय द्वारा संस्कृति के संवहन का शुभ संकल्प लिया है। आलोचनापरक दोनों लेखों से आलोचना की मुकम्मल तस्वीर नहीं उभरती। एक ही भाव को दो रूपों में दो लेखकों द्वारा व्यक्त किया गया है। दोनों लेखकों की दृष्टि एक है। दोनों आधुनिक चिंतन से आतंकबिद्ध हैं। हिन्दी आलोचना युगबोध से संश्लिष्ट है। रचना के समान ही आलोचना का परिदृश्य है जो चिंताजनक तो नहीं, संतोषप्रद है। लेखकों में व्यापक दृष्टि चाहिए, उन्हें विशद् रूप से पूरे परिवेश को समझना चाहिए।

कविताएँ पत्रिका की शान हैं। माना जाता है कि सरकार से सम्बद्ध कार्य हासोन्मुखी होते हैं उनमें फर्ज अदायगी मात्र होती है। आपका पत्र क्यों समृद्ध, सुरुचिपूर्ण एवं ज्ञानवर्द्धक है। □

अर्जुन तिवारी, पत्रकार, भाटपार रानी (देवरिया)

‘आजकल’ जनवरी अंक में 'कविता की सार्थकता' शीर्षक सम्पादकीय के बहाने आपने बिल्कुल उचित निष्कर्ष निकाला है—"कविता मनुष्य को बेहतर मनुष्य बनाने की भूमिका निभाती है।" इस निष्कर्ष के संदर्भ में अंक की लगभग सभी और विशेषकर डा. गुरचरण सिंह की कविता 'गुलाब के फूल' ने अधिक प्रभावित किया। डा. वेद प्रकाश अमिताभ ने नवें दशक की कविता के संदर्भ में अपने लेख 'कविता को हथियार बनाने की मानसिकता' द्वारा कविताओं में हथियारों के जिक्र तो ढूँढ लिए किन्तु प्रश्न यह है कि वे समाज की विसंगतियों के लिए कारगर सिद्ध कैसे हो सकेंगे? डा. रामदरश मिश्र की आत्मकथा के चौथे खंड 'उत्तर कथा' की झलक उसके अंश 'सांचा' में बखूबी देखी जा सकती है। कहानियों की तरह व्यंग्य की संख्या बढ़ाई जानी चाहिए। हरियश राय अपने व्यंग्य 'यहां हवा बिकती है' को अंत तक निभा नहीं पाए। सरकारी पत्र-पत्रिकाओं में पुस्तक समीक्षाओं के नाम पर खानापूर्ति की जाती है। 'आजकल' इसका अपवाद है। मुख पृष्ठ एवं अंतिम कवर ने मन मोह लिया। □

सत्यपाल सिंह सुष्म, डब्ल्यू जैड-107, नारायणा,
नई दिल्ली-110028

दि सम्बर अंक देर से मिला। यूँ समझिए जनवरी में ही मिला। मिलने के बाद जब पूरी पत्रिका को देखा तो कुछ भी त्याज्य नहीं मिला। कह सकता हूँ अंक संग्रहणीय है। सम्पादकीय रुचिकर ही नहीं श्रेष्ठ लगा। 'शहीदों के मध्य एक ध्रुवतारा' जनार्दनदास की सराहनीय कृति मानी जाएगी। 'साहित्य और सिनेमा' पर जो लेख आपने प्रकाशित किया वह अनूठा है। 'आलोचना' बहुत ही कसी हुई और सुबोध लगी। हिन्दी आलोचना में जो प्रयास हो रहे हैं उन पर खुलकर प्रकाश डाला है। इधर हिन्दी में आलोचना को आलोचकों ने राजनीति से जोड़ कर रख दिया है। इस सम्बंध में पोल खोलना उचित है। □

श्रीनाथ सिंह, भीमनगर, सहरसा (बिहार)

अंतर्राष्ट्रीय कला मेला

पिछले दिनों भारतीय कला जगत में एक विशेष हलचल रही। अवसर था राजधानी में आयोजित (12 फरवरी से 14 मार्च तक) अंतर्राष्ट्रीय कला प्रदर्शनी 'त्रिऐनाले'। ललित कला अकादमी इस अंतर्राष्ट्रीय कला मेले का आयोजन हर तीन साल पर दिल्ली में करती है और इसमें विश्व के प्रायः सभी बड़े देश हिस्सा लेते हैं परंतु इस बार इसका आयोजन पांच वर्ष के अंतराल पर किया गया। देर से ही सही पर आयोजन तो हुआ, यही हमारे कलाप्रेमियों के लिए एक सुखद बात है। पहली त्रैवार्षिकी अर्थात् 'त्रिऐनाले' का आयोजन 1968 में किया गया था। यदि यह क्रम नियमित रूप से चलता रहता तो शायद आज हम आठवां 'त्रिऐनाले' देख रहे होते। इस बार भारत समेत 39 देशों की साढ़े पांच सौ से अधिक कलाकृतियां इस अंतर्राष्ट्रीय कला मेले में प्रदर्शित की गई थीं। अमरीका, ब्रिटेन, फ्रांस, जर्मनी, इटली, सोवियत संघ और जापान के अलावा ईरान, सीरिया, विएतनाम, मिस्र, श्रीलंका, पाकिस्तान और बांग्लादेश ने इसमें हिस्सा लिया। फिर पूर्वी यूरोप के देशों—पोलैंड, रोमानिया, हंगरी, बुल्गारिया और युगोस्लाविया ने भी अपने कलाकारों की कृतियां भेजकर आयोजन की शोभा बढ़ाई। आस्ट्रेलिया और लेटिन अमेरिकी देश चिली, मेक्सिको, ब्राजील, वेनेजुएला और विशेष रूप से क्यूबा के कलाकारों की कृतियां भारतीय कलाप्रेमियों के विशेष आकर्षण का केन्द्र रहीं। यहां यह कहने का हमारा तात्पर्य कदापि नहीं है कि वर्षों के उपनिवेशवादी चंगुल और गुलामी से मुक्त हुए नव-स्वतंत्र अफ्रीकी राष्ट्रों जिम्बाबवे, ट्रिनिडाड, टोबैगो और ट्यूनीसिया आदि ने जो कलाकृतियां भेजीं वे कम महत्वपूर्ण थीं। दुनिया के प्रायः सभी हिस्सों ने इस कला मेले में भाग लेकर इसके महत्व को रेखांकित किया। विभिन्न देशों के कलाकार, कला-समीक्षक, चयनकर्ता और कला-पारखी भी इस अवसर पर भारत आए। 13-14 फरवरी को एक अंतर्राष्ट्रीय कला-परिस्वाद भी हुआ जिसमें भारत समेत दुनिया के कई देशों के कला-समीक्षकों और कला-विशेषज्ञों ने भाग लिया। भुवनेश्वर में एक अंतर्राष्ट्रीय ग्राफिक कार्यशाला आयोजित हुई और गोवा में एक अंतर्राष्ट्रीय कलाकार-शिविर का आयोजन किया गया।

इस अंतर्राष्ट्रीय कला मेले में विभिन्न देशों से आने वाली कलाकृतियों का स्तर चाहे जैसा भी रहा हो परन्तु इस तथ्य से इंकार नहीं किया जा सकता है कि भारतीय कला जगत के लिए इस प्रकार के आयोजनों का विशेष महत्व है। अंतर्राष्ट्रीय फिल्मोत्सवों, व्यापार प्रदर्शनियों और विज्ञान सम्मेलनों की तरह ही इस आयोजन की भी अपनी एक भूमिका है। इससे न केवल इस देश की आधुनिक कला को सजाने, संवारने और निखारने में सहायता मिलेगी बल्कि इसके माध्यम से विश्व बंधुत्व को भी बढ़ावा मिलेगा।

इस अंतर्राष्ट्रीय कला प्रदर्शनी में जहां विभिन्न देशों की हिस्सेदारी महत्वपूर्ण रही, वहीं कला समीक्षकों और कुछ बड़े कलाकारों द्वारा घरेलू हिस्सेदारी को लेकर अंगुली भी उठाई गई। भारतीय वर्ग में 67 कलाकारों के साथ ही छह आमंत्रित वरिष्ठ कलाकारों की 162 कलाकृतियां प्रदर्शित की गई थीं। इन्हें देखने के बाद यह महसूस हुआ कि ये कलाकृतियां यथासंभव समकालीन भारतीय कला का प्रतिनिधित्व तो करती हैं, परन्तु यदि प्रयास किया जाता तो इसे और बेहतर बनाया जा सकता था।

इस प्रदर्शनी में जहां ब्रिटेन की गिलियन आयर्स तथा जापान के मिरन फूकूदा सरीखे कलाकारों की कृतियों ने प्रभावित किया वहीं भारतीय वर्ग में विविध माध्यमों की कुछ बेहतर कृतियां अपनी विशेष पहचान स्थापित करने में सफल रहीं। विशेषकर पुरस्कृत कलाकृतियों में अब्बास बाटलीवाला का तैलचित्र, भारतीय ग्रामीण परिवेश के रंगों, रूपकारों, बिम्बों और अपने बेहतर विन्यासों के कारण हमें अपनी ओर आकर्षित करता है। भारतीय हिस्से की दूसरी पुरस्कृत कलाकृति श्रीमती प्रयाग झा चिल्लर के श्वेत-श्याम चित्रांकन में भी कुछ इसी तरह का प्रयास दिखाई देता है। एक बैचलर हास्टल की खड़ी चारपाई, खुले-बंद दरवाजे, खिड़कियां और कौओं की उपस्थिति यहां के परिवेश की निर्जनता से कुछ गंभीर संवाद स्थापित करती है। देवेन ने अपनी कृतियों में प्रकृति को जिन हृदयस्पर्शी रंगों और रूपाकारों से रूपायित किया, उसे देखकर हमें एक सुखद अनुभूति होती है। दीपक शिंदे, सी. डगलस, बद्रीनारायण नवजोत, नीरेश पोद्दार, शुभ प्रसन्ना और उमेश की कृतियां भी आधुनिक भारतीय चित्रकला के नए सौंदर्यबोध का आभास कराती हैं। प्रदर्शनी में ओम प्रकाश खरे के प्रस्तर शिल्प, अनिल कुमार की श्वेत संगमरमर के तराश कर गढ़ी गई कृतियां भी कलाकार की भावनाओं का बखूबी प्रदर्शन करती हैं।

कुल मिलाकर अपनी सभी खामियों के बावजूद यह मानना होगा कि इस सातवीं त्रैवार्षिकी के बहाने समकालीन भारतीय कला का विश्व की विभिन्न कलाओं के साथ तुलनात्मक अध्ययन करने और जानने परखने का एक अवसर मिला है। कला क्षेत्र में आधुनिकता के बाद अब एक नया कला-परिदृश्य उपस्थित हुआ है जो आधुनिकता से अपना संबंध तोड़कर चित्र और शिल्पभाषा में एक नई 'खोज' की ओर अग्रसर है। यह अवसर हाथ से न जाने पाए इसके लिए इस प्रकार के आयोजनों को और बेहतर बनाने का प्रयास जारी रखना होगा। □



अशोक स्तम्भ, नई दिल्ली

आंखों देखा भारत

प्योतर बारान्निकोव

जब मैं भारत आता हूँ तो रोज-रोज सड़कों पर घूमता रहता हूँ। दुकानों के साईनबोर्ड भी देखता हूँ। ये साईनबोर्ड बहुत दिलचस्प होते हैं। इनकी विशेषता यह है कि या तो ये एकभाषीय होते हैं, या द्विभाषीय या फिर त्रिभाषीय। जब मैं 1975 में भारत आया तो दिल्ली के नेहरू बाजार में एकभाषीय हिन्दी के साईनबोर्ड देखे। इन पर यह लिखा था—'चावला बुक डिपो' हमारे यहां मिडल क्लास की किताबें नई और पुरानी किताबें मिलती हैं। दूसरी दुकान पर देखा—'मोटे गद्दे रेडीमेड व आर्डर पर बनाए जाते हैं।' पंचकुइआं रोड की एक दुकान पर हिन्दी ही में देखा—'श्रीगणेश स्टोर', 'शर्मा केन एण्ड स्टील फर्नीचर हाउस'। जब आगरा पहुंचा तो वहां भी कुछ हिन्दी ही के साईनबोर्ड देखे। जैसे 'मोती वस्त्रालय', 'फैंसी क्लायथ स्टोर', 'विश्वास सेल्स कार्पोरेशन' 'काशी ट्रैक्टर्स' और 'रसगुल्ला हाऊस'। वाराणसी गया तो वहां भी हिन्दी के साईनबोर्ड मिले, जैसे—'ट्रैक्टर पार्ट्स', 'लक्ष्मी पंखें एवं सिलाई मशीन'।

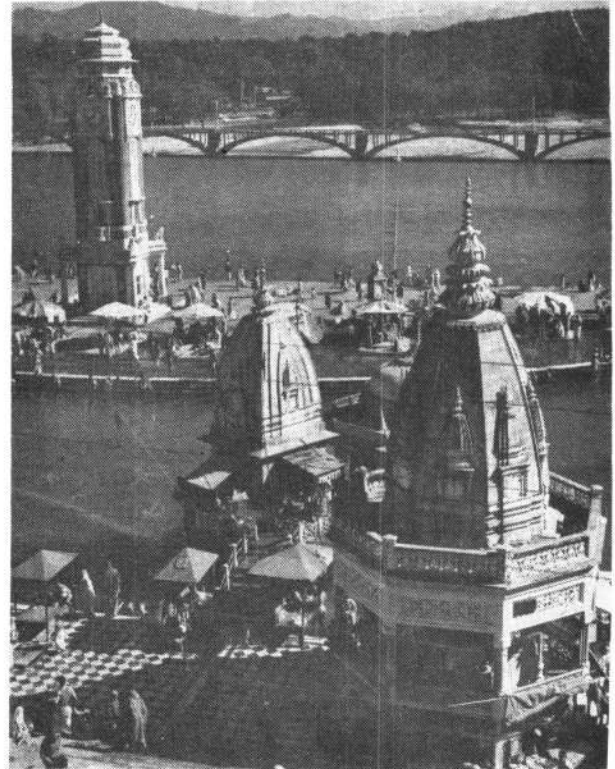
अलीगढ़ में भी दुकानों के हिन्दी के नाम मिले। एक जगह देखा—'राना बूट हाऊस', दूसरी जगह—'माडर्न पब्लिशिंग हाउस', तीसरी दुकान पर—'प्रकाशक तथा पुस्तक विक्रेता' चौथी दुकान पर—'लेडीज़ पर्स' और 'पेटीकोट'। मैं हरिद्वार भी गया। वहां भी हिन्दी के कुछ दिलचस्प साईनबोर्ड दिखाई दिए। 'श्री दुर्गा आयुर्वेद भवन'। दूसरी दुकान पर यह सूचना देखी—'यहां पर मिट्टी का तेल कंट्रोल रेट पर मिलता है'।

इसके बाद मैं बिहार गया। पटना पहुंचा तो वहां भी हिन्दी के ही अनेक साईनबोर्ड देखे। कपड़े की दुकानों पर नजर डाली तो देखा—'फैंसी वस्त्र विक्रेता', 'ब्लाउज़ पीस के विक्रेता', 'कट पीस सेन्टर'। इसके साथ 'कट पीस घर' भी देखने को मिला।

फिर मैं जबलपुर गया। वहां किताबों की दुकान रास्ते में मिली तो उस पर हिन्दी अक्षरों में लिखा गया था—'माडर्न बुक हाउस', दूसरी दुकान पर—'नेशनल गिफ्ट हाउस', तीसरी पर हाउस के स्थान पर 'भवन' आया—'पुष्प कटपीस भवन'। और भी अनेक ऐसे साईनबोर्ड मिले जो लिखावट ही से हिन्दी के थे, जैसे 'बुक कार्नर', 'रेडियो महल', 'रेडीमेड प्लेस', 'ड्रेस लैंड', 'ड्रेस सेन्टर', 'देवेन्द्र साइकिल शॉप', 'इलाहाबाद ट्रंक स्टोर्स', 'जनरल स्टोर्स', 'हेमन्त बुक स्टाल', 'बी.एस.सी. शूज़', 'शर्ट', 'पेंट', 'टावल' और 'बाल-पेन'।

इन सभी बातों से यह स्पष्ट होता है कि हिन्दी क्षेत्र में बहुत सी ऐसी दुकानें हैं जिनके साईनबोर्ड केवल हिन्दी ही में लिखे गए हैं। इनमें अंग्रेजी के शब्द भी काफी संख्या में हैं। ये साईनबोर्ड उन लोगों के लिए हैं जिनका मुख्य सम्पर्क साधन अंग्रेजी नहीं, हिन्दी है।

हिन्दी क्षेत्र में हिन्दी पढ़ने वालों के अतिरिक्त अन्य भाषाओं के लोग भी रहते हैं। इसी कारण साईनबोर्ड एक ही भाषा के नहीं, दो भाषाओं के भी होते हैं। 1975 में नई दिल्ली के नेहरू बाजार की एक दुकान पर एक ऐसा साईनबोर्ड मिला जिसके ऊपर हिन्दी में और नीचे उर्दू में लिखा गया था—'पंजाब मीट शॉप'। एक और इसी प्रकार का हिन्दी उर्दू साईनबोर्ड जबलपुर में देखा—'आगरा क्लायथ स्टोर्स'।



हरिद्वार

हिन्दी क्षेत्र के नगरों में बंगला भाषी भी रहते हैं। इसीलिए जबलपुर में एक बंगला-हिन्दी साईनबोर्ड भी दिखाई दिया—'दिगम्बर शॉप'। बंगला भाषा हिन्दी भाषा से ऊपर होने से लगता है कि इस दुकान का मालिक कोई बंगाली है।

भारत में अंग्रेजी भाषा के प्रयोग के कारण ऐसे भी द्विलिपि साईनबोर्ड हैं जिनमें अंग्रेजी भाषा और लिपि भी आ गई। कुछ दुकानदार हिन्दी भाषा को प्राथमिकता देते हैं, इसलिए ऊपर हिन्दी लिपि देते हैं और इसके नीचे अंग्रेजी लिपि। इस प्रकार के साईनबोर्ड मैंने वाराणसी में देखे—'आटो बैट्रीज़—Auto Batteries'। पटना में एक दुकान पर 'हिन्द बुक डिपो—Hind Book Depot' साईनबोर्ड है। जबलपुर में भी इसी प्रकार के साईनबोर्ड मिले—'इलाहाबाद ट्रंक स्टोर्स—Allahabad Trunk Stores'। 'बाम्बे बूट हाउस—Bombay Boot House' और 'महादेव वूल स्टोर्स—Mahadev Wool Stores'। कभी-कभी इन द्विलिपि साईनबोर्डों पर तीसरी लिपि भी आ जाती—उर्दू-लिपि। इस प्रकार का साईनबोर्ड मैंने अलीगढ़ में देखा—'लिबर्टी शूज़—Liberty Shoes' — **لبرٹی شوز**। दुकान का मालिक मुसलमान हो तो उसकी दुकान पर पहले उर्दू आएगी, इसके बाद हिन्दी और अंग्रेजी। जैसे 'हैंडलूम हाऊस—Handloom House'। इस साईनबोर्ड को भी अलीगढ़ में देख पाएंगे।

दुकान के ऐसे भी मालिक होते हैं जो प्राथमिकता हिन्दी को नहीं, अंग्रेजी को देते हैं। इसका फल है—अंग्रेजी-हिन्दी के साईनबोर्ड। आगरा में—'Furniture Dealers—फर्नीचर डीलर्स'। पटना में—'Prem Cycle Store—प्रेम साईकिल स्टोर'।

जिन साईनबोर्डों के उदाहरण मैंने दिए वे सभी वास्तव में दो-तीन भाषाओं के नहीं एक ही भाषा के हैं, दो-तीन लिपियों के ही हैं और यह एक भाषा अंग्रेजी है।

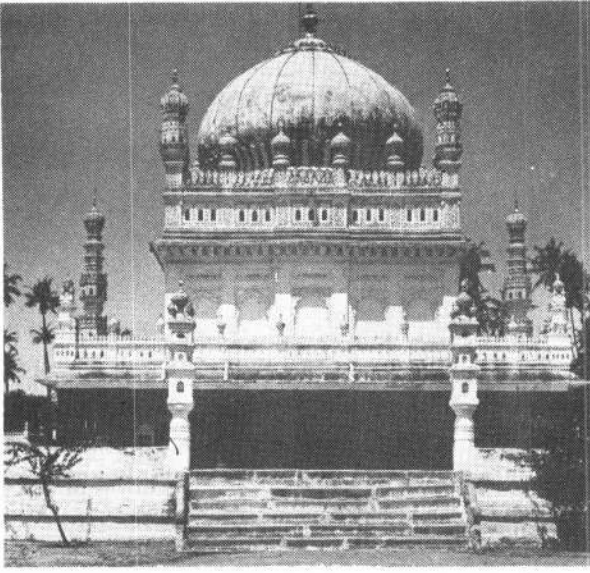
कभी-कभी हिन्दी भाषा के साईनबोर्ड दो लिपियों के होते हैं, जैसे—'Vidyut Kendra—विद्युत केन्द्र'। इस साईनबोर्ड को मैंने नई दिल्ली के नेहरू बाजार में देखा। अंग्रेजी हिन्दी के साईनबोर्डों पर कभी न केवल लिपि का बल्कि शाब्दिक अंतर भी मिलता है। इस प्रकार का साईनबोर्ड मैंने राजस्थान के नागला में देखा—'English Wine—अंग्रेजी शराब की दुकान'।

पटना में एक दुकान पर तीन भाषाओं में—अंग्रेजी, हिन्दी और उर्दू में लिखा गया था—Closed on Friday—शुक्रवार को बन्द रहता है। और उर्दू में—**جمعہ کے روز تعطیل رہتی ہے**—अर्थात्—जुमा के रोज तातिल रहती है।

अंग्रेजी-उर्दू-हिन्दी वाले साईनबोर्ड को मैंने उत्तर प्रदेश के मुरथले में देखा—Desi Wine Shop—**دھیکہ شراب دہسی**—ठेका शराब देसी'।



चौक बाजार वाराणसी



श्रीरंगपट्टम, मैसूर में टीपू सुल्तान का गुम्बद

कभी-कभी साईनबोर्ड पर गुरुमुखी लिपि भी दिखाई देती है। 1975 में नई दिल्ली के नेहरू बाजार पर देखा—'National Meat Shop—नेशनल मीट शॉप' (पंजाबी में)—'नेशनल मीट शॉप' (हिन्दी में)।

बहुत से ऐसे साईनबोर्ड भी मिलते हैं जो केवल अंग्रेजी के ही हैं। इस प्रकार के साईनबोर्ड उन भारतीय महाशयों के लिए तैयार किए जाते हैं जिनके लिए अंग्रेजी भाषा अपनी भारतीय भाषा से अधिक आसान या अधिक प्रिय लगती है, जिनके लिए अंग्रेजी भाषा का प्रयोग गर्व का विषय है। ऐसा साईनबोर्ड मैंने नई दिल्ली के पंचकुड़ियां रोड पर देखा—'Puri Lamps and Shades Shop No. 36, Municipal Market, Punchkuian Road, New Delhi'। इसी सड़क पर दूसरी दुकान पर देखा—'Sachdev Crockery House'।

बहुत से अंग्रेजी के ही साईनबोर्ड आगरा में मिलते हैं। इसका कारण यह है कि यहां देश-विदेश के अनेक यात्री ताजमहल देखने के लिए आते हैं। इस शहर की दुकानों पर मैंने देखा—'Marble Goods', 'New Marble Emporium', 'Music Corner', 'House of Stereos', 'Children's Corner', 'Neelam Chappal Store'। और खाने की चीजों की दुकान पर देखा—'Daily Needs Store, Dalls, Rice, Sugar, Atta and Oils'।

लखनऊ में अंग्रेजी की पुस्तकों की एक दुकान पर दिखाई दिया—'British Book Depot'। दूसरी पर—'Ram Advani Bookseller'।

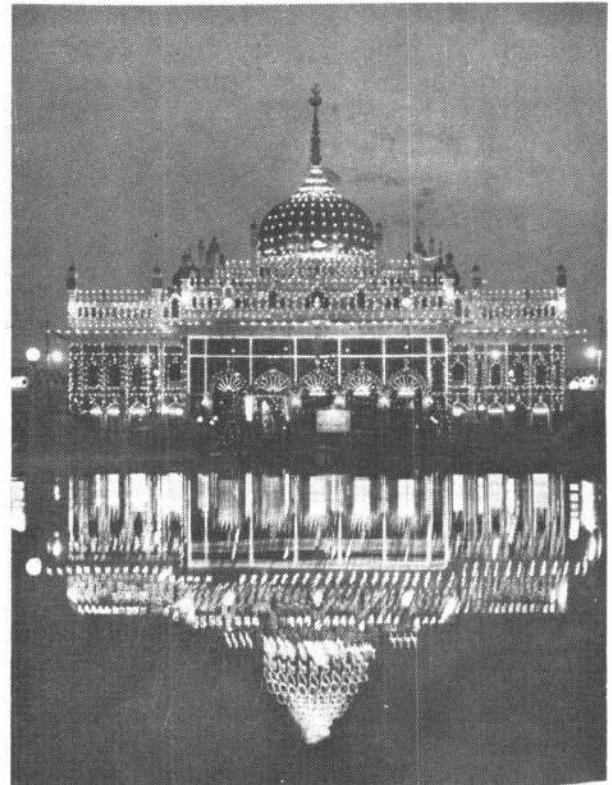
इलाहाबाद में अंग्रेजी भाषा के साईनबोर्ड उन दुकानों पर लगे हैं जिनमें अमीर लोगों के लिए चीजें मिलती हैं, जैसे—'Kashi Refrigeration' या 'Auto Sales, Spare Parts' या 'Khanna Radio Corporation'। एक घड़ी की दुकान पर, जो अलीगढ़ में है इस प्रकार का साईनबोर्ड दिखाई देता है—'Imperial Watch Co.'।

पटना में एक छोटी सी सरकारी दुकान दिखाई दी—'Govt. Pork Shop'। इसमें सुअर के गोشت की बिक्री होती थी।

कभी-कभी हिन्दी भाषा के साईनबोर्डों के लिए प्रोत्साहन दिया जाता है। इसके लिए दिल्ली का 'हिन्दी साहित्य सम्मेलन' हिन्दी साईनबोर्डों के लिए प्रतियोगिताएं आयोजित करता है। फिर भी नई दिल्ली में अभी तक बहुत सी दुकानों पर अंग्रेजी के साईनबोर्ड दिखाई देते हैं।

जब कोई आदमी किसी दुकान से कोई चीज खरीद लेता है तो दुकानदार एक विशेष कागज पर खरीदी हुई चीजों की सूची बनाता है। इस कागज पर दुकान का नाम उसका पता, उसका टेलीफोन नम्बर दिए जाते हैं। और यह सब कुछ अंग्रेजी भाषा में होता है। ऐसी चीजें मैंने देखा—'Empire Stores, 15-B, Connaught Place, New Delhi-110001', करोल बाग में भी देखा—'Kalco Footwear, House of Elegant, Karol Bagh, चांदनी चौक में भी देखा—'38, Chandani Chowk, Delhi'। कभी-कभी दुकानों में ऐसे भी 'Cash Memo' (रसीद) दिए जाते हैं, जिनमें अंग्रेजी में केवल दुकान का नाम दिया गया था और बाकी बातें हिन्दी में। इस प्रकार की दुकान मैंने दिल्ली के चांदनी चौक में देखी। इसका नाम था ज्योती साड़ी हाऊस, 1408, चांदनी चौक, दिल्ली-110006।

ऐसी भी दुकानें मिलती हैं जिनमें रसीद में दो भाषाओं में, अंग्रेजी और हिन्दी में सब कुछ दिया जाता है। इस प्रकार की दुकान है—'Shankar Cloth Store, 1370, Gali Ghantewali, Chandani Chowk, Delhi-110006'।



हुसैनबाद, इमामबाड़ा, लखनऊ



कनाट प्लेस, नई दिल्ली

ऐसी 'रसीदे' बहुत ही कम मिलती हैं जिनमें सब कुछ केवल हिन्दी में छापा जाता है। इस प्रकार की 'रसीद' मैंने हिन्दी पुस्तकों की दुकान में देखी जिसका नाम 'राजपाल एंड संज' है, यह कश्मीरी गेट, में है।

भारतीय दुकानों में अलग-अलग माल पर 'मूल्य सूची' नहीं होती। कभी मिलती है। इन्हें मैंने नई दिल्ली के सुपर बाजार में देखा। खाने की चीजों पर केवल अंग्रेजी में 'मूल्य सूची' थी। जैसे—'Black Masur—Rs. 2.75 kg.' और कपड़ों की मूल्य सूची दो भाषाओं में, हिन्दी और अंग्रेजी में थी, जैसे—'वूलन टेरीवूल—'Woollen and Terywool Suiting'।

तरह-तरह की चीजों के लेबलों पर भी भिन्न-भिन्न नाम दिए जाते हैं। जो धोने के लिए चीज होती उस पर उसका नाम अंग्रेजी और हिन्दी में दिया गया था—Surf और 'सर्फ'। नई दिल्ली में जो मक्खन मिलता है उसके पैकिंग पर अंग्रेजी और हिन्दी नाम दिए जाते हैं—'Amul Pasteurised Butter' और 'अमूल पास्टराइज्ड मक्खन'। डबल रोटी के पैकिंग पर भी दो भाषाएं होती हैं—'Modern Sliced White Sandwich Bread'। 'माडर्न स्लाइस्ड सफेद सैंडविच ब्रेड'।

कभी-कभी एकभाषीय नाम भी मिलते हैं जो अंग्रेजी के होते हैं, जैसे— 'Jai Beauty Soap, Colgate Dental Cream, Liptons Yellow Lable Tea'।

व्यापार-प्रचार में भी दो भाषाएं आती हैं—हिन्दी और अंग्रेजी। दिल्ली की बसों पर बीड़ी के प्रचार के लिए हिन्दी में लिखा जाता है—'पहले से दुगुना मजा लीजिए।' कभी-कभी इस प्रचार वाक्य का रूप कविताबद्ध भी होता है—

"लाईफ बाय है जहां
तंदरुस्ती है वहां।"

कहीं-कहीं अंग्रेजी भाषा के नारे मिलते हैं— Enjoy Coca-Cola Things go better with Coca-Cola.

ये दोनों नारे मैंने 1975 में नई दिल्ली में देखे। पैकिंग पर दो

भाषाओं के वाक्य भी मिलते हैं। अल्यूमिनियम बर्तन की पैकिंग पर यह दिखाया जाता है—

किचन किंग

Kitchen King

भोजन बनाने का उत्तम साधन

For All Purposes

एक विशेष कागज पर अंग्रेजी में उन खाने की चीजों के नाम दिए गए थे जो रांची में एक सरकारी बेकन फैक्टरी में बनाए जाते हैं, जैसे—Ham, Bacon, Luncheon, Meet, Sausages, (Cocktail, Hotdogs, Frankfurter etc.) Pork Kabab.

जो लोग सड़क पर कोई चीज बेचते हैं वे अंग्रेजी का नहीं अधिकतर हिन्दी का प्रयोग करते हैं। 1975 में वे लगातार इस प्रकार के नारे लगाते थे—बारह आने का पाव! या तो टमाटर बेचने वाला यह नारा लगाता था—आठ आने पाव। दिल्ली की सड़कों पर यह भी सुनाई देता था—चार आने के दो—गरम समोसे! उसी समय केले वाला नारा लगाता—चार आने के दो! गोभी वाले की आवाज आती थी—गोभी अस्सी पैसे किलो, गोभी अस्सी पैसे।

कनाट प्लेस पर भी जो सड़क पर बेचने वाले होते वे भी हिन्दी का प्रयोग करते हैं। जैसे—टाई वाले की आवाज होती थी—साढ़े चार, साढ़े चार!

एक दिन जब मैं चांदनी चौक से गुजर रहा था तो किसी दुकानदार ने मुझ से हिन्दी में कहा—पंडित जी, क्या चाहिए? उसी चांदनी चौक की नम्बर 4951 दुकान के मालिक से, जिसका नाम रामनाथ गोयल है, जब मैं बात कर रहा था तो उससे पूछा कि जो लोग उनकी दुकान पर आते हैं—उनमें कितने लोग हिन्दी में बोलते हैं और कितने अंग्रेजी में—तो उन्होंने बताया कि लगभग नब्बे प्रतिशत लोग हिन्दी में बोलते हैं और केवल दस प्रतिशत अंग्रेजी में। दूसरे दुकानदार, अनिल कुमार खन्ना ने मुझ से कहा कि काम करते समय वह हिन्दी भाषा का प्रयोग करते हैं। वाराणसी में जहां भारत के अनेक भागों से तीर्थ यात्री आया करते हैं वहां के दुकानदार भारत की अन्य भाषाओं का भी प्रयोग करते हैं और जो दुकानें तथाकथित उच्च सज्जनों के लिए होती हैं इनमें काम करने वालों के लिए Fluency in English essential अर्थात् अंग्रेजी में बातचीत का अच्छा ज्ञान होना चाहिए। इसके बारे में एक अंग्रेजी समाचार पत्र में एक विज्ञापन में लिखा गया था।

यह भाषाई चित्र मैंने भारत के हिन्दी क्षेत्र के व्यापार क्षेत्र में 1975 में देखा था। अब मैं दुबारा भारत आया हूं फिर सड़कों पर घूमते हुए देखता रहूंगा और पता लगाऊंगा कि इस दिशा में कैसा परिवर्तन हुआ है। □

बारांन्निक्वेव
केमारोवो, लेनिनग्राद,
सोवियत संघ

लोकशक्ति की कविता : दलित-कविता

पुरुषोत्तम सत्यप्रेमी

'कविता की लोक-प्रकृति' लेख में डा. जीवनसिंह ने लिखा है, "कविता, जो जीवन-संस्कृति का महत्वपूर्ण घटक है, समय की कृत्रिम शिष्टताओं से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकी है, लेकिन जब-जब उसने कृत्रिम आचार-व्यवहारों के नाज-नखरों से खुद को सजाने-संवारेने की रीति अपनाई है तब-तब लोक के सहज व्यवहार और निष्कपट ऊंचाई ने उसके अवरोधों को हटाया है।" वे आगे लिखते हैं, "जो कवि जीवन-संदर्भों की वास्तविकता तक पहुंचने के प्रयासों में लगे, उनकी घोर उपेक्षा भले ही हुई हो, उनका आत्म और बाह्य संघर्ष लम्बे समय तक रहा हो, लेकिन आज की रचनात्मक सार्थकता का प्राणबिन्दु उन्हीं की कविता में सन्निहित है। कहने का तात्पर्य है कि संघर्ष से बचते हुए किसी व्यक्तिबद्ध मन का विलास-विश्लेषण हिन्दी कविता का सही रास्ता नहीं है। हिन्दी कविता की प्रकृति लोक-बद्धता की है।" स्पष्ट है कि जमीन से जुड़ी हुई जन-गण-मन की कविता समकालीन दलित कविता ही है, जो समता-ममता की नींव पर टिकी हुई और सक्रिय जीवन के मूल्यों को आज प्रस्थापित करने की चेष्टा में है। दलित कविता के पास जाना देश के उस सामाजिक जीवन के पास जाना है, जो कर्मरत जीवन जीने के बाद भी भूखा और नंगा है तथा जिसके पास समृद्धि-सुख की मंजिल पाने के लिए 'सफलता-सीढ़ी' भी नहीं है। फिर भी देश के बहुसंख्यक उस दलित जनसाधारण के समाज का जीवन-सोता सूखा नहीं है, उसकी अपनी सांस्कृतिक पहचान लोकगीत-लोकनृत्य-लोकवाद्य-लोकवार्ता-लोकभाषा-बोली-लोककला और लोक-पहनावा वस्त्र-आभूषण है और हर हालत में प्रसन्न बदन-प्रसन्न मन रहकर मनुष्य, प्रकृति और समाज को देखने की उसकी अपनी आंख है।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने कर्म-सौन्दर्य की कवि-परम्परा और निष्क्रिय कर्म-प्रदर्शन के विषय में जो विचार प्रकट किए हैं, वे आज के दलित-काव्य एवं जीवन-परिवेश को समझने की कुंजी है— "कर्म-सौन्दर्य के जिस स्वरूप पर मुग्ध होना मनुष्य के लिए स्वाभाविक है और जिसका विधान कवि-परम्परा बराबर करती चली आ रही है, उसके प्रति उपेक्षा प्रकट करके और कर्म-सौन्दर्य के एक-दूसरे पक्ष में ही केवल प्रेम और भ्रातृभाव के प्रदर्शन और आचरण में ही काव्य का उत्कर्ष मानने का जो एक नया फैशन टालस्टाय के समय से चला है वह एक देशीय है। दीन और असहाय जनता को निरन्तर पीड़ा पहुंचाते चले जाने वाले क्रूर आतताइयों को उपदेश देने, उनसे दया की भिक्षा मांगने और प्रेम जताने तथा उनकी सेवा-सुश्रुषा करने में ही कर्त्तव्य की सीमा नहीं मानी जा सकती, कर्म क्षेत्र का एकमात्र सौन्दर्य नहीं कहा जा सकता।" कहना न होगा कि लोक-हृदय में लीन होने को रस दशा मानने वाले आचार्य शुक्ल की लोकशक्ति या बद्धता भी कर्म-शक्ति के सौन्दर्य पर आधारित है।

गजानन माधव मुक्तिबोध के कविता और कविता सम्बंधी आलोचना-दर्शन और व्यवहार को पढ़ने से पता चलता है कि वे कविता को एक सांस्कृतिक कर्म मानते हैं तथा उसे जीवन के नाना-प्रसंगों, घटनाओं—सामाजिक-आर्थिक-राजनीतिक से काटकर केवल कविता तक सीमित करके नहीं देखते। वे जीवन-संदर्भों से कटी हुई किसी भी रचना-वृत्ति को स्वीकार नहीं कर पाते। उनके लिए काव्य केवल शब्द नहीं रह जाता; अर्थ और अभिप्रायों का माध्यम भी है। मुक्तिबोध शब्द को साधन का महत्व देते हैं और रचना की परिणति सश्लिष्टता में मानते हैं, न कि केवल 'भाव-संहति' तक।

दलित कविता का आशय उस कविता से है जो संवेदना के धरातल पर मनुष्य से जुड़ती है—उससे संवाद करती है और मनुष्य से मनुष्य को जोड़ती है तथा समता-ममता वाले समाज की संरचना के लिए 'हृदय की आंख' होकर मूक माटी को मुखरता प्रदान करती है। दलित कविता व्यक्ति को अपने भीतर बंद नहीं करती, वह तो मनुष्य को मनुष्य से मुक्त कर मनुष्य को समूचे बाहर की ओर उन्मुख-समाजोन्मुख करती है। दलित कविता प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष किसी भी रूप में पलायन नहीं है, वह तो अनिवार्य होने पर अपने आप से, अपनी प्रकृति से, अपने समाज से और अपने समय से विद्रोह करती हुई निरन्तर संघर्ष करती है—लड़ती है, पर वह हिंसा नहीं करती और किसी प्रकार भी किसी स्तर पर अलगाव-आतंक को प्रोत्साहित नहीं करती, अपितु वह हिंसा और घृणा का प्रेम से प्रतिकार कर मनुष्य और मनुष्य समाज को सचेत व कर्मनिष्ठ बनाए रखती है। इसीलिए समकालीन दलित कविता शोषित, पीड़ित, प्रताड़ित, अपमानित दलित जनसाधारण की समग्र आवाज है और उनके संघर्ष-पथ को 'अपना दीपक आप बनो' से आलोकित करने वाली क्रांति की मशाल भी है। दलित कविता की यह समग्रता—'वागर्थ सम्पृक्ति' सामाजिक सम्बद्धता से एकता न होकर हर तरह की भ्रान्ति को तोड़ती है और नई भ्रान्ति को पनपने, फलने-फूलने का अवसर भी नहीं देती है।

दलित कविता का दलित जनसाधारण वह 'दलित' है, जिसमें व्यक्तिवाद से उत्पन्न अहम्, अजनबीपन और अलगाव की भावना नहीं है। इस दलित जनसाधारण समाज में सभ्यता-संस्कृति में नित नए परिवर्तन होने तथा वैज्ञानिक उपलब्धियों के नित नए साधनों-वस्तुओं के व्यवहार में आने के बावजूद सामाजिकता के स्तर सुरक्षित हैं और समता-ममता भरे निकट सम्बंध केवल अपने कुटुम्ब और परिवार के बीच ही नहीं हैं अपितु अपनी बस्ती-मोहल्ले, पास-पड़ोस और गांव के बीच उन सम्बंधों को एकतान फलते-फूलते-खिलते देखा जा सकता है। इसका कारण, दलित जनसाधारण का एक संगठन में रहकर अनुशासित कर्मनिष्ठ जीवन जीना ही है।

दलित जनसाधारण के पास किसी विश्वविद्यालय या शैक्षणिक संस्थान की उपाधि या प्रमाणपत्र नहीं है और न ही धन-संस्कृति वाला विशिष्ट व्यक्तित्व है। फिर भी दलित जनसाधारण के पास ईमान है, सच्चाई है, शौर्य-धैर्य है और सबसे बड़ी बात है निरन्तर कर्मशील रहने की शक्ति व साहस है। इसीलिए दलित जनसाधारण समाज रेल की पटरियां बिछा सकता है, समुद्र को बांध सकता है, अत्याचारियों के वैभव को उजाड़कर उसके हौसले पस्त कर सकता है, रेगिस्तान को हरा-भरा बना सकता है, दुश्मन का भरी सभा में अपना अंगद-पैर रोपकर मान-मर्दन कर सकता है। यही कर्मशक्ति इनको संवेदना के धरातल पर करुणा और प्रेम का पाठ पढ़ाती है और सामाजिक सम्बद्धता के साथ निरन्तर आगे बढ़ते रहने याने कर्मरत रहने के लिए प्रेरित करती रहती है।

दलित कविता का कवि दलित जनसाधारण का सचेत रचनात्मक ताप का दलित कवि है, उसके लिए आजादी का मतलब मनुष्य से मनुष्य की मुक्ति है, गुलाम बनाए रखने वाले शस्त्र और शास्त्रों से मुक्ति है और असमानता व शोषण का बिगुल बजाने वाले सामन्तवादी समाज से मुक्ति है। वह अपने गौरव-आत्मसम्मान को संवेदना के धरातल पर अभिव्यक्त करता हुआ समता-ममता के समाज की संरचना का स्वप्न देखता है। वह यातनाओं के खिलाफ संघर्ष कर विजय के लिए संकल्पबद्ध है, वह समूचे समाज का अंग बनकर छाती ताने जीने लगा है और आलस्य, उदासीनता, उपेक्षा, और घृणा आदि के कारण आप्त मानव-मूल्यों में नष्ट होती शक्ति को नवनिर्माण के लिए सक्रिय करने में लगा है। वह अपनी कविता, कहानी, उपन्यास आदि से ही नहीं, आचरण से भी अपने दलित जनसाधारण से सम्बद्ध है और उसका विद्रोह बारूद के समान 'जल उठने की तुरन्त इच्छावाली दियासलाई की एक तीली' की समाज को बदलने की संघर्ष यात्रा है।

इस प्रकार दलित कवि के कवि-धर्म की सार्थकता निरपेक्ष नहीं है, वह समाज की आवश्यकताओं से सम्बद्ध है। इसी सम्बद्धता ने समता, बन्धुता, स्वतंत्रता वाले समाज की संरचना के लिए उसे संगठित होकर संघर्ष करने की 'मुक्तता' दी है और इसी मुक्तता ने संवेदना-रचना के धरातल पर उसको उसकी संभावनाओं के अर्थ से अभिन्न बना दिया है। दलित कविता के रचनाकार ने धूमिल के 'कविता के जरिए हस्तक्षेप' के द्वारा बताया है कि 'मेरी कविता इस तरह अकेले को सामूहिकता देती है और समूह को साहसिकता।' स्पष्ट है कि कवि, व्यक्ति को दलित जनसाधारण समाज का अभिन्न अंग बनाकर उसे लौह-पुरुष के रूप में प्रस्तुत करता है। दलित जनसाधारण को अपनी संवेदना-समग्रता का सहभागी बनाते हुए कविता के बाद अपने तीव्र और तीखे अनुभवों के साथ दलित जनसाधारण समुदाय पाठकों की यात्रा कराते हुए दलित कवि अपने दायित्व का निर्वाह करता है। वह अपनी समग्रता को—रचनात्मक ताप को अपने पाठकों को सम्प्रेषित कर उद्देलित करता है और व्यापक परिवर्तन से जुड़ा भी है और जोड़ता भी है।

दलित कविता के कवियों ने गांव और शहर के दलित जनसाधारण की कराहती आवाज को केवल सुना ही नहीं है,

अपितु संवाद किया है। प्रजातंत्र की आड़ में सामंतिओं के आतंकवश गिरोहों के मनो-जगत में घुमड़ती भयानक छायाओं को पहचाना है, वेदनाओं की किस्मों और जुल्मों के नए-नए रूपों को आंखों से देखा है, सहा है। झुगगी-झोपड़ियों की गंदी बस्तियों में रहते निर्धन लोगों की 'जीती-जिन्दगी' के स्पन्दन को महसूस और व्यवस्था व विकास के नाम पर 'ढाक के तीन पात' की स्थिति से जूझते प्रश्नों से साक्षात्कार भी किया है।

इस प्रकार इतिहास की लम्बी यात्रा के बाद दलित जनसाधारण के कवियों की चेतना ने अपना गुणात्मक स्वरूप कायम किया है, इसीलिए वह अब बाह्य सत्ता से लगातार संघर्ष करती है और इन्हें क्रांतिकारी ढंग से परिवर्तित करती है। चेतना और बाह्य सत्ता का संघर्ष एवं चेतना और चेतना का संघर्ष—इतिहास का नियम है। चेतना सम्पूर्ण मानवीय विकास का प्रवाह है, उसका अस्तित्व है कि खुद बने और समाज को बदले, उसकी उर्वरा शक्ति मनुष्य और मनुष्य समाज को संघर्ष के लिए समर्थ बनाती है। पूंजीवादी, सैन्यवादी अथवा साम्राज्यवादी व्यवस्था के भीतर जन्मा दलित रचनाकार अपने मानसिक-सांस्कृतिक रचव से आत्म-संघर्ष के द्वारा मुक्ति पाता है। आत्म-संघर्ष व्यक्तिवादी रचनाकार का भी द्वेता है, परन्तु वह समाज से कटाव का होता है, जबकि दलित कविता का रचनाकार सामाजिक सम्बद्धता के लिए संघर्ष से गुजरता है। सामाजिक संघर्ष का सीधा अर्थ है—किसी भी प्रकार की व्यवस्था के नाम से चल रही सत्ता-व्यवस्था के भीतर चल रहे शोषक और शोषित के बीच का संघर्ष। दलित रचनाकार प्रत्यक्ष रूप से संघर्ष में शरीक होता है और अपने अनुभवों को इसी जीवन्त रूप में भोगे हुए यथार्थ से लाता है। यथार्थ से लगातार सम्पर्क उसके सामाजिक, व्यक्तिगत और क्षणगत, शब्दगत और कर्मगत अन्तर्विरोधों को पहचानने की कोशिश में उसकी परत दर परत सामने आई है।

दलित कविता का रचनाकार उन सामाजिक अन्तर्विरोधों की यथार्थ मूक माटी और लाठी, गोली, पद-प्रहार के दमन, दलन, उत्पीड़न की वेदना व पीड़ा से सम्पृक्त जीवित रहने की कर्मनिष्ठ धूल में रचा-बसा है, जिसकी प्राणधारा से वह खिलता है, रंग पाता है और खुशबू बिखेरता है। क्योंकि दलित कविता का कवि अपनी क्रांतिधर्मिता के साथ समाजोन्मुखी और ओजस्वी होता है। इसीलिए उसमें पौरुष और आवेग की जो केन्द्रीयता है, वही वस्तुपरक स्थितियों और यथार्थ से अन्तर्क्रिया करते हुए उसके काव्य की सामाजिक भूमिका तथा चारित्रिक क्रिया-कलापों को रूपायित करती है। यह मानवीय आवेग का विद्रोह और संघर्ष की चेतना दलित कविता के क्रांतिधर्मी कवि के व्यक्तित्व की मानसिक बनावट और बनावट का जरूरी हिस्सा है। किसी भी प्रकार की तटस्थता और निरपेक्षता को वह स्वीकार नहीं करता। क्योंकि इनके मूल में भावावेश और भावुकता ही रहती है।

दलित कविता के कवि का निजी संदर्भों का रागात्मक आवेग ही सामाजिक संदर्भों में विद्रोह और क्रांति की पक्षधरता को उजागर करता है। उसके काव्य में जाति भेद, वर्ण भेद, वर्ग भेद, ऊंच-नीच और भाग्य-कर्म भेद की असमानता, अस्पृश्यता व शोषण-उत्पीड़न के विरुद्ध स्पष्ट रूप से विद्रोह की व्यंजना होती

है। दलित कविता में साम्राज्यवाद, पूंजीवाद, व्यक्तिवाद, सामंतवाद, अलगाववाद और वैराग्यवाद के विरुद्ध ही जेहाद नहीं है, अपितु प्रत्येक स्तर पर किए जाने वाले भेद, पलायन और शोषण के खिलाफ जेहाद है। इस जेहाद में शिक्षा, संगठन और संघर्ष प्रमुख कारक हैं, जिनका धरातल पाकर दलित कविता का कवि आत्मनिर्भर, आत्म-सम्माननी व सुखी-समृद्धिशाली प्राणेच्छा वाले मनुष्यों के समतावादी-स्वतंत्रचेता एवं प्रगतिशील समाज की संरचना के लिए अपनी क्रांतिधर्मी सृजन भूमिका का निर्वाह करता है।

दलित कविता और उसके सिरजता कवि की सरिता-प्रवाह सी परम्पराएं उसकी अपनी अस्मिता, रागात्मक अनुभवों की जमीन और जीवन की गौरवशाली सांस्कृतिक परम्परा से अभिन्न है। 'दलित दृष्टि' के कवि की इतिहास-संस्कृति की दृष्टि वर्तमान पर व्यंग नहीं करती, वह वर्तमान के प्रश्नों को अभिषिक्त करती है। क्योंकि अपनी धरती, अपने आकाश और अपनी प्रकृति के क्रोड़ में जन्मने के बाद भी उसे प्राणेच्छा के लिए संघर्षरत रहना पड़ा है। प्रकृति से उसे जो शाश्वत सौन्दर्य-बोध प्राप्त हुआ, कर्मनिष्ठ और 'संतोषी सदा सुखी' रहने की प्रवृत्ति मिली तथा समाजोन्मुख-समर्पण और स्वाभिमान की प्रेरणा मिली, वही सम्यक दृष्टि उसकी अपनी प्रकृति से अभिव्यजित होकर विद्रोह व क्रांति के बलि पथ पर निरन्तर आगे बढ़ती रही है ताकि अपनी प्रकृति और प्रकृति के साथ वह भी 'हरा-भरा' और 'फलता-फूलता' रह सके। उसकी अपनी प्रकृति तथा प्रकृति को प्रदूषित करने वाले असमानता-अन्याय-अत्याचार-अनाचार-उत्पीड़न-शोषण के कारकों के विरुद्ध जेहाद छेड़कर समतावादी समाज के शाश्वत सौन्दर्य-बोध को अस्मिता प्रदान कर सकें, यही उसका कवि सिरजता है और उसका कवि-कर्म भी है। दलित काव्य का कवि जिस धरती से, जिस धरती पर जन्मा है और जिस धरती ने उसकी प्राणेच्छा का दमन-दलन किया है, उसी शक्ति विरुद्ध मुक्तता के साथ सिर उठाकर अपनी सृजन यात्रा के लिए निकल पड़ा है—आग, पानी और तूफान बनकर। इस सृजन यात्रा में 'आंदोलन के लिए आंदोलन' की वैचारिक प्रतिबद्धता नहीं है, अपितु सामाजिक सम्बद्धता है और सम्बद्धता-समरसता की बेचैनी ही रागात्मक अनुभवों की अभिव्यंजना के लिए उत्प्रेरक का कार्य करती है।

कविता की अभिव्यंजना का यह सौन्दर्य-बोध ही रचनाकार के रचनात्मक व्यक्तित्व को अपनी प्रकृति, प्रकृति और समाज से अभिन्नता प्रदान करता है। कवि-व्यक्तित्व की एक निरन्तरता बनी रहना भी दलित कविता की अपनी विशेषता है। इसी कारण दलित कविता के कवि की भाषा में ओज और रवानी है, सरलता और सहजता है, शब्दों का वेग, प्रवाह और उत्थान-पतन है। उसकी काव्य-भाषा में बनावटीपन की कोई छुअन तक प्रतीत नहीं होती। अपने दलित जनसाधारण पाठकों से एकतान होने पर ही ऐसा होता है, उसका ध्येय अपने कवि और काव्य का विकास ही नहीं है अपितु अपने दलित जनसाधारण पाठक समुदाय का विकास भी है। क्योंकि कवि के यथार्थ और सौन्दर्य-बोध में दलित जनसाधारण का पाठक अपना यथार्थ और सौन्दर्य-बोध भी पाता है। अस्तु, आज आवश्यकता इस बात की है कि दलित कविता को

'दलित-दृष्टि' की पूर्णता में पढ़कर उस पर विचार किया जाए और इस प्रकार के काव्य की दशा, दिशा, वातावरण और प्रभाव का मूल्यांकन किया जाए। पता नहीं कब तक यह आवश्यकता बनी रहेगी, समालोचक-विद्वान इस दलित कवि की शाश्वत सृजनात्मक काव्य-धारा को अनदेखा-अनचिन्हा करते रहेंगे।

हिन्दी में समकालीन दलित कविता को प्रारम्भिक रूप से निराला ने 'वह तोड़ती पत्थर', 'भिक्षुक' और 'विधवा' तथा बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' ने 'जूठे पत्ते' कविता से मुखरित किया। लेकिन इन कवियों की कविताओं में समय की धारा को मोड़ने की 'दलित चेतना' का अभाव है। फिर भी वे हमारे काम के हैं। इधर हिन्दी कविता की प्रगतिशील कविता, नई कविता, अकविता, जनवादी कविता, सहज कविता आदि के कुछ कवियों ने इतिहास की प्रमुख धारा बनी दलित कविता के साथ जुड़ने की कोशिश की है। दिनकर, मुक्तिबोध, केदार, सुमन, नागार्जुन, त्रिलोचन, धूमिल, आलोक धन्वा, विजेन्द्र, नीलाभ, कुमारेंद्र, पारसनाथ सिंह, शलभ श्रीरामसिंह, लीलाधर जगुड़ी, नरेन्द्र शर्मा, मानसिंह राही, रमेश रंजक, चंचल चौहान, वेणुगोपाल, अशोक चक्रधर, अरुण कमल, उदय प्रकाश, राजीव सक्सेना, विश्वनाथ त्रिपाठी, चन्द्रकांत देवताले, श्रीराम तिवारी, भारत भारद्वाज, कुमार विकल, श्याम सिंह 'शशि', प्रमोद त्रिवेदी, राजेश जोशी, मंगलेश डबराल आदि कवियों की सभी रचनाएं दलित कविता नहीं हैं, तो भी उनकी कविताओं में आई 'दलित-चेतना' संदेह से परे है, वे दलित जनसाधारण समाजोन्मुखी हैं और उनकी अंतर्वस्तु भौतिक सच्चाइयों से आंख मिलाती है और सामाजिक विसंगतियों, अन्याय और शोषण से भी उनका सरोकार है। इन कवियों ने यह जान लिया है कि जीवन की गम्भीरता के लिए जीवन के मूल्यों को हंसते-हंसते नहीं, संघर्षपूर्ण तरीके से प्राप्त किया जा सकता है। ये रचनाकार खतरा उठाना चाहते हैं और उसका प्रमाण उनकी रचनाएं हैं, इस क्रम में छद्म की भी कमी नहीं। लेकिन हमें देखना यह भी है कि क्या यह छद्म जानबूझकर है या सही अर्थों में दलित जनसाधारण समाज की ओर उन्मुखता है या दलित कविता के 'रचना ताप' की आंच से बहुत दूर का रिश्ता है?

मराठी भाषी दलित कविता रचनाकारों को छोड़कर हिन्दी की दलित कविता के सशक्त हस्ताक्षर श्याम सिंह 'शशि' के प्रबंध-काव्य 'अग्नि सागर', 'एक दधीचि और', 'ढाई आखर', 'लाल सवेरा', 'लहू के फूल' तथा 'एकलव्य और अन्य कविताएं', सोहनपाल सुमनाक्षर का 'अंधा समाज और बहरे लोग', पुरुषोत्तम सत्यप्रेमी के 'सबालों के सूरज' और 'बिक चुका हो समय जब', ओमप्रकाश वाल्मीकि का 'सदियों का संताप', लालचंद राही के 'कदिमोत्थान', 'भीम चेतावनी', डा. आम्बेडकर का 'जीवन गीत' व 'मूक नहीं मेरी कविताएं', कवि खद्योत का 'दलित-चेतना', 'धनंजय अवस्थी का खण्डकाव्य 'शबरी', प्रो. जयकिरण का खण्डकाव्य 'एकलव्य', चोखेलाल वर्मा का खण्डकाव्य 'वीरांगना झलकारी बाई', हरजीतलाल लोदवाल का महाकाव्य 'रविदास रामायण', सुनीता महेन्द्रा का

(शेष पृष्ठ 42 पर)

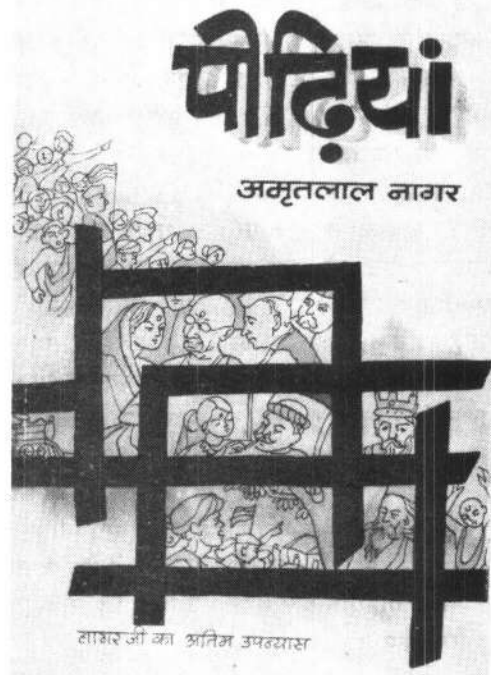
अमृतलाल नागर का हंसगीत

डा. हरदयाल

स्वा तंत्रयोत्तरकालीन हिन्दी उपन्यास की एक प्रवृत्ति यह रही है कि कुछ उपन्यासकारों ने भारतीय इतिहास के विशेष कालखण्ड को उपन्यास-शृंखला में बांधने का प्रयत्न किया है। ऐसा प्रयत्न करने वाले उपन्यासकारों में आचार्य चतुरसेन शास्त्री, उपेन्द्रनाथ 'अशक', भगवतीचरण वर्मा, यशपाल आदि प्रमुख हैं। इन्हीं उपन्यासकारों में स्व. अमृतलाल नागर भी गणनीय हैं। अपने दो उपन्यासों 'करवट' और 'पीढ़ियां' के कारण वे इस वर्ग में स्थान पाने के अधिकारी हैं। 'पीढ़ियां' उनका हंसगीत (अन्तिम उपन्यास) है। यह हिन्दी का सौभाग्य ही कहा जाएगा कि वे अपने स्वर्गवास से पूर्व इसे न केवल पूरा कर सके, अपितु इसे संशोधित भी कर सके।

अपने उपर्युक्त दोनों उपन्यासों में नागर जी ने 1854 से लेकर 1986 तक के भारतीय इतिहास को बांधने का सफल प्रयास किया है। इस सम्बन्ध में 'पीढ़ियां' की 'अपनी बात' में उन्होंने लिखा है—'... 'करवट' में 1854 से लेकर 1902 तक के काल का चित्रण किया है और प्रस्तुत उपन्यास 'पीढ़ियां' में सन् 1905 के स्वदेशी आन्दोलन और क्रांतिकारी आतंकवाद से लेकर सन् 1986 के विघटनकारी आतंकवाद तक का काल आंकित है। 'करवट' में रायसाहब बंसीधर टण्डन से लेकर उनके पौत्र और सन् 1942 के शहीद जयन्त के जन्म तक की कहानी आई है। प्रस्तुत उपन्यास में जयन्त की कहानी उनका पौत्र युधिष्ठिर टण्डन लिखता है।' (पृ. 6) 'पीढ़ियां' एक शृंखला की कड़ी होने पर भी अपने आप में पूर्ण उपन्यास है। इस उपन्यास का आनन्द लेने के लिए इससे पूर्व के उपन्यास 'करवट' को पढ़ना अनिवार्य नहीं है।

'पीढ़ियां' में एक साथ एकाधिक कहानियां चलती हैं—कहीं एक-दूसरे के समानान्तर और कहीं एक-दूसरे को काटती हुई। एक कहानी डा. देशदीपक टण्डन की है जो लखनऊ के प्रतिष्ठित चिकित्सक हैं। उन्होंने धन और यश खूब कमाया है। 1905 में उन्होंने फोर्ड कार खरीदी थी। उनमें अद्भुत उदारता और परदुःख कातरता है। अपने सहकर्मी डा. श्याममनोहर के विदेश चले जाने पर उसकी पत्नी के सम्मान की रक्षा करने के लिए लाला बल्लभदास का पांच हजार रुपये का कर्जा अपनी जेब से चुका देते हैं और बाद में उसकी पुत्री के विवाह में भी सहयोग देते हैं। उनके दो पुत्र हैं जयन्त और हंसराज। हंसराज मैट्रिक परीक्षा उत्तीर्ण करते-करते आयुर्वेदिक दवाइयों के व्यापार में लग जाता है और कानपुर में अपने श्वसुर के साथ ही बस जाता है। पिता के



पीढ़ियां; लेखक : अमृतलाल नागर; प्रकाशक : राजपाल एण्ड सन्ज, कश्मीरी गेट, दिल्ली-6; पृष्ठ संख्या : 412; मूल्य : 125 रुपये।

परिवार के साथ एक प्रकार से उसका सम्बन्ध विच्छेद हो जाता है। उसकी कोई विशेष कहानी नहीं है सिवा इसके कि वह और उसकी सन्तान खूब धन कमाते हैं और करोड़ों में खेलते हैं। मुख्य कहानी जयन्त की है।

जयन्त की कहानी को उसके पौत्र युधिष्ठिर ने एक उपन्यास के रूप में लिखा है। युधिष्ठिर उत्तर प्रदेश के भूतपूर्व मुख्यमंत्री सुमन्त टण्डन का पुत्र और 'ईवनिंग स्टार' तथा 'मार्निंग टाइम्स' में नौकरी करने वाला पत्रकार है। उसका मित्र जावेद जयन्त टण्डन की जीवनी लिखने का इरादा बनाता है और युधिष्ठिर उसी सामग्री के आधार पर उपन्यास। 'पीढ़ियां' में जीवनी नहीं है, उपन्यास है। जयन्त पढ़ने में बहुत तेज था और छात्र जीवन से ही उसका राजनीति के प्रति लगाव था। लखनऊ में उसने स्वदेशी का आन्दोलन खूब जोर-शोर से चलाया लेकिन बड़े अंग्रेज अधिकारियों के साथ अपने पिता के सम्बन्धों के कारण बचता रहा। उसके पिता उसे उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिए विदेश भेजना चाहते हैं और वह जाना नहीं चाहता। उसमें एक और प्रवृत्ति है—अतिरिक्त कामेच्छा। पहले वह प्रेमकिशोरी के प्रति आकर्षित होता है, किन्तु प्रेमकिशोरी की सावधानी और भय तथा मां के हस्तक्षेप के कारण बात आगे नहीं बढ़ती है। फिर वह आमिना बेगम की अठारह-बीस वर्ष की आकर्षक सेविका अनारो के सम्पर्क में आता है और बात यहां तक बढ़ जाती है कि वह गर्भवती हो जाती है। भयभीत जयन्त चुपचाप उच्च शिक्षा प्राप्त करने इंग्लैण्ड चला जाता है। अनारो का गर्भपात कराया जाता

है। जयन्त विदेश से बैरिस्टर बन कर लौटता है। जब वह बम्बई पहुंचता है तभी उसके पिता का लखनऊ में निमोनिया से निधन हो जाता है। लखनऊ लौटकर जयन्त कांग्रेस में सम्मिलित हो जाता है। वह एक वकील और राजनेता के रूप में खूब प्रसिद्धि प्राप्त करता है। उसकी काम सम्बन्धी दुर्बलता आजीवन बनी रही। स्वदेश में और विदेश में उसके अनेक स्त्रियों के साथ सम्बन्ध रहे, लेकिन सबसे अधिक स्थाई सम्बन्ध इलाहाबाद के विलासी रईस रायबहादुर रघुनन्दन प्रसाद खन्ना की तीसरी पत्नी मनोरमा खन्ना से रहा। इस सम्बन्ध का पता सबको है। मनोरमा खन्ना का पुत्र कृष्णा खन्ना जयन्त का ही पुत्र है। रघुनन्दन प्रसाद के निधन के बाद यह बात कृष्णा को बता दी गई और उसने अकण्ठ भाव से इसे स्वीकार कर लिया। उपन्यासकार ने जयन्त के विवाहेत्तर काम-सम्बन्धों को इस प्रकार चित्रित किया है कि उनमें कोई अनौचित्य नहीं रह जाता। राजनेता के रूप में स्वदेशी आन्दोलन से लेकर सन् 1942 के 'भारत छोड़ो' आन्दोलन तक सभी में जयन्त ने बढ़-चढ़ कर भाग लिया और अपनी देशभक्ति, साहस, त्यागभावना और संगठन क्षमता का परिचय दिया। 1942 में भूमिगत रहते हुए लखनऊ आकर एक नुकड़ सभा को सम्बोधित करते हुए जयन्त पुलिस के हाथों शहीद हुआ। उस समय उसका एकमात्र पुत्र सुमन्त जेल में था और उसके पौत्र अनन्त का जन्म हुआ था।

सुमन्त भी राजनीति के क्षेत्र में सक्रिय हुआ और उत्तर प्रदेश का मुख्यमंत्री बना, लेकिन भैरों प्रसाद वर्मा के विश्वासघात के कारण उसे राजनीति से विरक्ति हो गई और वह अपना अधिकांश समय अयोध्या में बिताने लगा। उसके बाद भैरों प्रसाद भी मुख्यमंत्री बना, लेकिन अधिक दिन तक उस पद पर नहीं रह सका। एक गरीब परिवार से आने वाला बी. पी. (भैरों प्रसाद) प्रारम्भ में जितना आदर्शवादी था, बाद में उतना ही भ्रष्ट हो गया। युधिष्ठिर और जावेद ने मिल कर उसके कई षड्यंत्रों का भण्डाफोड़ किया और उसकी राजनैतिक छवि को नष्ट कर दिया। अयोध्या में सुमन्त की सहज मृत्यु के साथ यह उपन्यास समाप्त होता है।

जिस क्रम से हमने उपन्यास की कहानी प्रस्तुत की है उसी क्रम से वह उपन्यास में नहीं आई है। घटनाएं आगे-पीछे आई हैं क्योंकि नागर जी ने अपने इस उपन्यास में उपन्यास के भीतर उपन्यास के शिल्प को अपनाया है। इस शिल्पगत प्रयोग का उपयोग वे इससे पहले भी अपने एकाध उपन्यास में कर चुके थे। डा. देशदीपक, जयन्त और सुमन्त के व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन की घटनाओं को सही राजनैतिक परिप्रेक्ष्य मिलता चले, इसके लिए नागर जी बीसवीं शती के भारतीय इतिहास की महत्वपूर्ण घटनाओं का उल्लेख अपने इस उपन्यास में करते चले हैं। उन्होंने जिन घटनाओं का उल्लेख किया है उनमें से कुछ प्रमुख घटनाएं इस प्रकार हैं—उत्तर प्रदेश में पी.ए. सी. का विद्रोह, उसके परिणामस्वरूप मुख्यमंत्री का बदला जाना, पंजाब में 'आपरेशन ब्लू स्टार', इंदिरा गांधी की हत्या, पंजाब में आतंकवाद, अयोध्या में विवादास्पद बाबरी मस्जिद का ताला खुलवाया जाना, शहाबुद्दीन और शाही इमाम की आदम सेना, पाकिस्तानी शह पर खालिस्तान का आन्दोलन, वन्दे मातरम

सभाएं, स्वदेशी आन्दोलन, बंग-भंग, कांग्रेस की ऐतिहासिक घटनाएं, विभिन्न हिन्दू-मुस्लिम दंगे, जनरल वैद्य की हत्या, सन्त लोंगोवाल की हत्या, जलियांवाला बाग का हत्याकाण्ड, चौरीचौरा काण्ड, प्रथम महायुद्ध, विभिन्न क्रांतिकारी आन्दोलन, रौलट बिल पर गांधी जी का सत्याग्रह, असहयोग आन्दोलन, खिलाफत आन्दोलन, लोकमान्य तिलक का निधन, असहयोग आन्दोलन का स्थगन, 'द रेवोल्यूशनरी पार्टी आफ इण्डिया' का गठन, क्रांतिकारियों द्वारा व्यापारियों के यहां लूट, काकोरी स्टेशन पर रेलगाड़ी रोककर क्रांतिकारियों द्वारा सरकारी खजाने की लूट, साईमन कमीशन, उत्तर प्रदेश के अतिरिक्त अन्य धारा सभाओं में इसके स्वागत के प्रस्ताव पारित, 8 अप्रैल 1929 को भगतसिंह और बटुकेश्वरदत्त द्वारा असेम्बली में धमाके और पर्चे फेंकना, उनकी गिरफ्तारी और फांसी की सजा, नमक कानून तोड़ो-आन्दोलन, लन्दन में हुई गोलमेज कांग्रेस की असफलता, सविनय अवज्ञा आन्दोलन, गांधी-इरविन-समझौता, कानपुर में गणेश शंकर विद्यार्थी की हत्या, नक्सलवादी आन्दोलन, गांधी जी का हरिजनोद्धार आन्दोलन, 1936 के चुनाव और अनेक प्रान्तों में कांग्रेस सरकारों का गठन, दूसरा विश्वयुद्ध और अंग्रेज सरकार द्वारा उसमें भारत के शामिल होने की घोषणा, इस पर प्रान्तीय कांग्रेस-सरकारों के त्यागपत्र, 1942 का 'भारत-छोड़ो' आन्दोलन इत्यादि। ये घटनाएं इतिहास में जिस क्रम से घटी हैं, यहां उस क्रम से न देकर उपन्यास में जिस क्रम से आई हैं, उस क्रम से हमने दी हैं। इससे यह अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है कि उपन्यास में घटनाक्रम वक्र गति से चला है, काल और स्थान के सरल स्वाभाविक क्रम से नहीं।

लेखक ने अपने उपन्यास के लिए सामग्री इतिहास-ग्रन्थों, स्थानीय गाथाओं, प्रत्यक्षदर्शी व्यक्तियों से प्राप्त अनुभवों, संस्मरणों, अपने निजी अनुभवों आदि से एकत्र की है। 'अपनी बात' में स्वाधीनता आन्दोलन का स्थानीय इतिहास प्रस्तुत करने वाली कुछ पुस्तकों का उल्लेख भी कर दिया है—'बलिया में सन् 42 की जनक्रांति' (दुर्गाप्रसाद गुप्त), 'लखनऊ जनपद का स्वतंत्रता-संग्राम' (तबस्सुम निजामी भारतीय), 'रायबरेली का स्वतंत्रता-संग्राम' (मदनमोहन मिश्र)। अपने अनुभव का उपन्यासकार ने किस प्रकार उपयोग किया है इसका एक उदाहरण पर्याप्त होगा। लखनऊ में साईमन के आने पर 'साईमन गो बैक' के नारे के साथ विरोध में निकाले गए जुलूस में सम्मिलित एक बालक का चित्रण इस प्रकार किया गया है—'एक तेरह वर्षीय बालक के पैर जमीन से उठ गए थे। दाएं-बाएं आगे-पीछे की भीड़ के धक्कों से उस बालक के पैर धरती से लगभग सात-आठ इंच ऊपर उठ गए थे एक जूता पैर से निकल गया। दम घुट रहा था। भीड़ इस कदर हड़बड़ी और उन्मादी जोश के दौर से गुजर रही थी कि किसी का ख्याल ही न था। संयोग से वह बालक धक्के खाता हुआ एक गली के मुहाने पर छिटक कर गिर गया, गिरने से चोट तो आई, मगर भीड़ से निकलने की राहत भी महसूस की।' (पृ. 323)। जिस बालक का यह चित्रण है वह और कोई नहीं स्वयं अमृतलाल नागर हैं। अपनी आत्मकथा 'टुकड़ा-टुकड़ा दास्तान' के लेख 'साईमन गो बैक' में इस घटना का उन्होंने विस्तृत वर्णन प्रस्तुत किया है। उपन्यास को

विश्वसनीयता प्रदान करने के लिए स्थानों और व्यक्तियों के यथार्थ नामों, वास्तविक तिथियों और प्रसिद्ध घटनाओं का उपयोग नागर जी ने किया है। असहयोग आन्दोलन में गांधी जी के आह्वान पर अनेक वकीलों, अध्यापकों, विद्यार्थी-वर्ग आदि ने सरकारी संस्थाओं को और अपनी वृत्तियों को छोड़ा। अपना अध्ययन छोड़ने वाले तमाम विद्यार्थियों में से एक हिन्दी के प्रसिद्ध कवि सुमित्रानन्दन पन्त भी थे। पन्त जी ने अपनी पढ़ाई छोड़ने की इस घटना का उल्लेख अपने संस्मरणों में एकाधिक बार किया है। नागर जी ने भी अपने इस उपन्यास में असहयोग आन्दोलन के प्रसंग में इस घटना का उपयोग किया है (पृष्ठ 291-92)। अपनी स्थापनाओं को पुष्ट करने के लिए भी नागर जी ने प्रसिद्ध व्यक्तियों और घटनाओं को किंचित परिवर्तित करके उदाहरणस्वरूप प्रस्तुत किया है। अंग्रेजी शिक्षा ने पढ़े-लिखे भारतीयों को बेकारी का शिकार बनाया और उनमें चारित्रिक विकृतियों को जन्म दिया, इसके उदाहरणस्वरूप मुफ्तखोर डा. श्यामाचरण श्रीमाली से सम्बन्धित घटना-प्रसंगों का वर्णन किया है (पृष्ठ-206-09)। डा. श्रीमाली और उनसे सम्बन्धित घटना-प्रसंगों को पढ़ते समय हमें स्पष्टतः लगता है कि नागर जी ने डा. श्रीमाली का व्यक्तित्व और उनसे सम्बन्धित घटनाओं को हिन्दी के प्रसिद्ध नाटककार भुवनेश्वर के आधार पर गढ़ा है। इस सबका परिणाम यह हुआ है कि उपन्यास इतिहास जैसा प्रामाणिक और विश्वसनीय लगने लगा है।

नागर जी अद्भुत किस्सागो थे। उनकी किस्सागोई की कला का निखरा हुआ और परिपक्व रूप हमें 'पीढ़ियां' उपन्यास में देखने को मिलता है। घटनाओं, प्रसंगों, स्थानों और व्यक्तियों से सम्बन्धित विवरण आदि उन्होंने अपने उपन्यास में इस प्रकार प्रस्तुत किए हैं कि वे हमें पूर्णतः अपने में मग्न कर लेते हैं। नागर जी के अन्य उपन्यासों के समान उनका यह उपन्यास भी इतना रोचक बन पड़ा है कि कोई पाठक उसे एक बार पढ़ना शुरू करके बीच में छोड़ नहीं पाएगा। उपन्यास को रोचक बनाने में मुख्य कथा के अतिरिक्त प्रासंगिक कथाएं भी अपनी भूमिका बखूबी निभाती हैं। वी. पी. वर्मा के षड्यंत्रों की कहानियां, व्याख्यान वाचस्पति वासुदेव शर्मा और श्यामकुमारी आर्या के प्रेम की कहानी, अनारो और जयन्त की प्रेमकथा, गोमती टण्डन की कहानी, कुंवर रिछपाल सिंह की कहानी, अनारो-नन्दिनी यास्मीन उर्फ सरस्वती देवी और लम्पट रामलोचन पाण्डे की कथा, दुलारी घोसिन और मुंशी नौबतलाल का किस्सा आदि अनेक प्रासंगिक कथाएं उपन्यास की रोचकता को निश्चय ही बढ़ाती हैं। इनमें से कई कहानियां ऐसी हैं जिनका मुख्य कथा के साथ सीधा-सीधा कोई सम्बन्ध नहीं है, लेकिन उन्हें नागर जी ने प्रस्तुत ऐसे किया है कि वे अप्रासंगिक या उपन्यास में अलग से जोड़ी हुई नहीं लगती। प्रत्यक्ष रूप से न सही परोक्ष रूप से वे मुख्य कथा की प्रभाव-वृद्धि में अवश्य सहायक हैं। और कुछ नहीं तो वे परिवेश का निर्माण अवश्य करती हैं। अमीर लोगों के रहन-सहन, समाज के विभिन्न वर्गों के रीति-रिवाज, महंगाई, खानपान, वेश्यागमन की प्रवृत्ति, विलायती वस्तुओं के प्रति आकर्षण, गली-कूचों में अंग्रेजी शिक्षा, बेरोजगारी, राजा नवाबों के आचरण, जुलूसों, दंगों, बाजारों आदि के नागर जी ने ऐसे सजीव विवरण प्रस्तुत किए हैं कि पूरा परिवेश साकार हो उठा है।

उपन्यास के विभिन्न घटक परस्पर ऐसे घुले-मिले हैं कि उन्हें अलग कर पाना असम्भव है। उदाहरण के लिए इस संवाद को ही लीजिए—

"हरे भैया, वो तुम्हारे यहां बिना तेल-बत्ती का चिराग है?"

"हां है। परभू, दिखाओ इन्हें बैट्टी।"

"बाह, क्या विलायती दिमाग पाया है इन अंग्रेजों ने भी। कमाल है। किस्से में अलादीन के चिराग की बात सुनी थी मगर यह बिना तेल-बत्ती का चिराग—बई इसमें रोशनी कैसे होती है?"

"यह देखिए, बटन दबाया और रोशनी हो गई। अंधेरे में देखिए तो दूर तक रोशनी जाएगी।"

"कितने की है?"

"साढ़े चार रुपये की।"

"अमां, साढ़े चार, गजब करते हो लाला जी! ठीक दाम बताओ।"

"विलायती रेट है मियां जी, हिन्दुस्तानी घिस-घिस नहीं।"

"अमां, कुछ तो कम करो। यह तो सोचो कि मशागंज से तुम्हारी दुकान पूछते-पूछते आए हैं।"

"बड़ी इनायत है आपकी, मगर दाम कम नहीं होंगे। मियां जी।"

"अमां तीन लीजिए।"

"नहीं।"

"अच्छा, साढ़े तीन सही।"

"आप हजरतगंज में तलाश कर लीजिए। मेरा पड़ता नहीं आता है।"

"ओफफोह, बड़े सख्त मिजाज हैं लाला जी। अच्छा, लेओ, तुम्हारा लिहाज करके चार दे देते हैं मगर इससे जादा न मांगना।" चार सिक्के शाही बटुए से निकाल कर रखे और मियां जी ने कहा: "क्या कहें लाला जी, वो हमारी जो बिना तेल-बत्ती का चिराग है, उनकी फरमाइश है। और ये मसाले की बट्टी जो इसमें आपने रखी है, यह क्या ताकयामत चलेगी लाला जी?" (पृष्ठ 116-17).

कहने को तो यह संवाद का उद्धरण है, लेकिन क्या यह मात्र संवाद है? नहीं, यह मात्र संवाद नहीं है। यह संवाद के अतिरिक्त उपन्यास का परिवेश है, पात्रों की चरित्र-रचना है, उनका मनोविज्ञान है, लेखक की भाषिक क्षमता है, पात्रों के साथ उसका रिश्ता है और है उपन्यासकार का वह शरारती मन जो अपने पात्रों और पाठकों के साथ बराबर छेड़छाड़ करता रहता है। यह जीवन के प्रति नागर जी की गहरी संसक्ति का परिणाम है। वे अपने चतुर्विध के जीवन को बड़ी गम्भीरता और सूक्ष्मता के साथ देखते थे और उसके सम्बन्ध में अपनी राय कायम करते थे। उन्होंने अपने इस उपन्यास में तमाम मुद्दे उठाए हैं और उन पर अपनी स्पष्ट राय व्यक्त की है। इस राय से कोई सहमत हो या असहमत, यह अलग बात है। पूरे उपन्यास का सिंहावलोकन

करने पर हमें लगता है कि जैसे स्वतंत्रता-पूर्व और स्वतंत्रता के बाद के भारत की तुलना उपन्यासकार ने प्रस्तुत की है और इस तुलना के बाद युधिष्ठिर के शब्दों में उसका निष्कर्ष है—“इन बदमाशों ने हमारे जन-जीवन का स्तर कितना घटिया कर दिया है। एक तरफ पुराने क्रांतिकारियों के वैल्यूज को देखता हूं, गांधीजी के सिद्धांतों पर नजर जाती है तो इन नर-पिशाचों के लिए मन में गालियां ही गालियां भर जाती हैं।” (पृष्ठ-310) गांधी जी और उनके अनुयायियों को लेकर युधिष्ठिर की यह सोच भी नागर जी की ही सोच है और कितनी सच है—“कितने साहसी थे गांधी, जो उन्होंने हार कर भी हार नहीं मानी। इसी देश के लोग गांधी की शिक्षा पर बाद में छाती खोल कर अंग्रेजों की गोलियां खाने के लिए तैयार हो जाते थे। घोड़ों से रौंदे गए, लाठियां और गोलियां खाईं मगर अहिंसा-पथ को न छोड़ा। यह गांधी के साहस का ही परिणाम था। दूसरे महायुद्ध की बढ़ती हुई महंगाई और मुनाफाखोरी की वृत्ति से गांधी द्वारा पाई गई भारतवासी की आत्मशक्ति ने इस मुनाफाखोरी के आगे आखिरकार घुटने टेक दिए। लेकिन किसने टेके? गरीब तो गरीब से गरीबतर हो गए, घुटने गांधी के धनवान चेलों ने ही टेके। और उनके साथ राजनीति का प्रपंच करने वाले महत्वाकांक्षी लेखक भी जुट गए। नैतिकता अनैतिकता में परिवर्तित होने लगी। और कितना घिनौना है यह रूप।” (पृष्ठ-299) स्वतंत्र भारत की नैतिक स्थिति पर यह बड़ी तीखी टिप्पणी है। भैरों प्रसाद वर्मा का स्वतंत्रतापूर्व और स्वतंत्रता के बाद का आचरण जैसे इस टिप्पणी का ही साकार व्यक्ति रूप है। उपन्यासकार की इस दृष्टि ने चरित्र रचना को भी निश्चय ही प्रभावित किया है। उसने अपने इस उपन्यास में अनेक छोटे-बड़े अविस्मरणीय पात्र प्रस्तुत किए हैं जिनमें कुछ सच्चरित्र हैं कुछ दुश्चरित्र और माटी के पुतले यानी न पूर्णतः अच्छे, न पूर्णतः बुरे, लेकिन एक भी पात्र ऐसा नहीं है जो अविश्वसनीय लगता हो। कारण इस उपन्यास के पात्र जीवन से उठाए गए हैं, कल्पना से नहीं गढ़े गए हैं।

बोलचाल की भाषा में नागर जी की रुचि प्रारम्भ से ही रही है। अतः चाहे उनकी कहानियां रही हों, चाहे उपन्यास या और कोई विधा, हमें उनकी रचनाओं में भाषा के इतने नमूने मिलते हैं जितने हिन्दी के किसी दूसरे लेखक की भाषा में नहीं मिलते, और इस प्रवृत्ति के कारण उनकी रचनाएं स्थानीय भाषा सर्वेक्षण जैसी बन गई हैं। ‘पीढ़ियां’ में यह प्रवृत्ति भरपूर विद्यमान है। इस उपन्यास को पढ़ते समय यह स्पष्ट हो जाता है कि शब्दों के उच्चरित रूप और उनके अर्थान्वेषण पर उनकी खोजी दृष्टि लगी रहती थी। आगे उद्धृत दो कथन इस बात का प्रमाण हैं (1) “ह ह ह चीलगाड़ी, धुआं गाड़ी, पैरगाड़ी, क्या-क्या नाम रखे हैं हमारे हिन्दुस्तानियों ने इन विलायती मशीनों के।” (पृष्ठ 196)। (2) “तुम अपने को आजी कहलाओ, आजी आर्या का हिन्दी रूप है।” (पृष्ठ-393) भाषा के प्रति नागर जी का यह आकर्षण संवादों की वैविध्यपूर्ण भाषा के रूप में मुख्यतः अभिव्यक्ति पाता है। इस उपन्यास के जितने प्रमुख पात्र हैं उनके बोलने की भाषा और लहजे के भी उतने ही रूप हैं। कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं—

(1) “साहेब, आप लोग अंग्रेजी में कहते हो कि हम इण्डियन हैं और तब आप सब पंच सिकूलर कहे जात हो। हिन्दी में भारती

कहते हो तबहूँ सिकूलर, और हम ससुर जो कहें कि हम हिन्दू हैं तो आप लोग कहत हो कि तू साले कमूनल आय। ईमां कौन बात ठीक है तनिक बताव जरा।” (पृष्ठ-10)

(2) “अरे मैं आपे परेसान हूं वर्मा जी! बिरादरी में, रिस्तेदारी में सब जगह हमरी नाक कट जेह। आपका क्या, आप तो नेता होंगे, सच-झूठ बोलना आपका रोज का धन्धा हैगा।” (पृष्ठ-21)

(3) “अरे बहूजी, जब पहले पहल राम जी महजिद मां परगट भए रहे नां तो एक मियां भाई रहे काने शेटेबिल। उई कहे कि रात के बारा बजे जमीन फोड़ के नूर परगट भवा और ऐसा रंग-बिरंगा नूर कि जैसे राम जी का धनुष होए।” (पृ. 31)

(4) “यह तो आपकी जर्नलवाजी है चचा साहब। मगर देखता हूं कि इधर आपकी कास्ट पर उसने चूँकि बेतहाशा अपनी पब्लिसिटी कर ली है, इसलिए उसका दिमाग खराब हो गया है। मोरओवर आई ऐम बेरी मच अशेमड टू नो डैट ही हैज बिकम द स्टान्च कम्यूनलिस्ट ओवर नाईट।” (पृ. 44)

(5) “अरे गंवई गांव मां हम पंचन का तारीक-सम्मत आद तौ पढ़ावा नहीं जात रहे बाबू। बाकी हां, बप्पा के मुंह से सुनां रहै कि जौन दिन मल्काटूरिया के बेटवा बिलाइत मां राजगद्दी पाइन रहैं वहै दिन हमार जलम भवा रहा।” (पृ. 69)

ये कुछ ही उदाहरण हैं। उपन्यास से ऐसे और बहुत से उदाहरण दिए जा सकते हैं। भाषा के इन विविध उच्चरित रूपों को अवधारित करने की नागर जी की शक्ति पर आश्चर्य होता है।

‘पीढ़ियां’ उपन्यास के इस संक्षिप्त विवेचन से उसकी गुणवत्ता का अनुमान लगाना कठिन नहीं है। इस उपन्यास को पढ़ना एक अविस्मरणीय अनुभव से गुजरना है। □

एच-50, पश्चिमी ज्योति नगर,
गोकुलपुरी, दिल्ली-110094

‘आजकल’ मंगाने का पता

व्यापार व्यवस्थापक
प्रकाशन विभाग
पटियाला हाउस
नई दिल्ली-110001

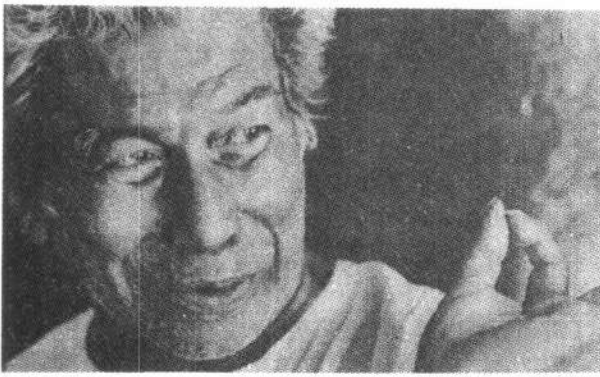
वार्षिक: 30.00 रु.

द्विवार्षिक: 54.00 रु.

त्रिवार्षिक: 72.00 रु.

चेक/बैंक ड्राफ्ट अथवा मनीऑर्डर

व्यापार व्यवस्थापक प्रकाशन विभाग के नाम देय होना चाहिए।



मूर्ति शिल्पकार राम किंकर वैज

प्रेम कृष्ण टंडन

आधुनिक भारतीय मूर्ति शिल्प में सबसे सशक्त नाम है राम किंकर वैज (1910-1980) शांतिनिकेतन से जुड़े वह ऐसे कलाकार थे जिन्होंने भारतीय मूर्तिकला को नए सौंदर्य बोध के साथ नया आयाम दिया। उनके समय में मूर्तिकला मंदिरों की पारंपरिक कला थी या फिर सैद्धांतिक यथार्थवाद की प्रतिलिपि। यह दोनों ही मार्ग उन्हें अभीष्ट नहीं थे। उन्होंने न तो भारतीय परम्परा की परवाह की और न ही पश्चिमी आदर्शों की अंधाधुंध नकल। बस अपना मार्ग स्वयं प्रशस्त करके मौलिक मूर्तिशिल्पी की संज्ञा अर्जित की। शांतिनिकेतन में अपनी शिक्षा समाप्त कर वे मूर्तिकला विभाग के प्रधान बने। उसी अवधि में विनोद बिहारी मुकर्जी (1904-1980) कला इतिहास के प्रमुख रहे। यह विधि की विडम्बना ही है कि यह दोनों ही कलाकार एक ही वर्ष परलोक सिधारे अर्थात् 1980 में। आचार्य नंद लाल बसु (1883-1966) के दोनों ही प्रिय शिष्य थे। जो विश्व भारती में प्रशिक्षण के बाद प्राध्यापक बने। दोनों ने ही समय के अवसाद के साथ अपने गुरु-मास्टर मोशार्ड के सिद्धांतों से सर्वथा हट कर अपनी-अपनी राह खोजी। और अपनी-अपनी शैली विकसित करते हुए कला जगत में ख्याति प्राप्त की।

राम किंकर का जन्म 1910 में पश्चिम बंगाल के बांकुरा जिले के गांव जुगीपाड़ा में हुआ था। पिता चंडीचरण थे और माता संपूर्णा। ननिहाल मजदूर वर्ग की थी। पढ़ाई गांव में प्रारम्भ हुई। इस बीच गांधी की आंधी ने युवा राम किंकर को प्रभावित किया। पहले वह गांव की नौटंकीयों के लिए पर्दे और पोस्टर बनाते और पूजा के दिनों में दुर्गा और काली की प्रतिमाओं के निर्माण में हाथ बंटाते थे, तो अब सूत कातने लगे। 1924 के आसपास बांकुरा में अंग्रेजी मासिक 'मार्डर्न रिव्यू' के संस्थापक सम्पादक रामानंद चटर्जी (1865-1943) का आगमन हुआ जो उसी स्थान के थे। किसी ने उनसे राम किंकर का परिचय करा दिया। रामानंद पारखी थे ही, उन्होंने राम किंकर के अंदर की छिपी प्रतिभा को तत्काल पहचान लिया। रामानंद ने राम किंकर को अपने साथ ले लिया। और शांतिनिकेतन में आचार्य नंद लाल के सुपुर्द कर दिया।

उस समय शांतिनिकेतन को प्रारंभ हुए कुछ ही वर्ष हुए थे। उसका अपना वातावरण था। कला भवन के उदीयमान छात्र कंधों पर रंग-बिरंगे झोलों में कला सामग्री और ड्राईंग पेपर लिए प्रकृति का निरीक्षण करते घूमते-फिरते थे। जगह-जगह हंसी मजाक करती सांवली संधाल बालाओं की आवाज सुनाई देती थी। कहीं कोई गाता दिखाई देता। परिसर का उल्लासभरा उन्मुक्त वातावरण था। ऐसा परिवेश गांव से सीधे आने वाले युवक को रास कर गया। कला में बचपन से रुचि थी। बस युवा राम किंकर को फलने-फूलने का सुअवसर मिला। उन्होंने विश्व भारती से ललित कला में डिप्लोमा किया और वहीं कला भवन के मूर्तिशिल्प विभाग के अध्यक्ष का पदभार संभाल लिया।

कला भवन में चित्रकला की शिक्षा की समुचित व्यवस्था थी किन्तु मूर्ति कला के प्रशिक्षण का विशेष प्रबंध नहीं था। कभी-कभार विदेशी कलाकारों को आमंत्रित किया जाता। जो मूर्ति कला के कुछ गुर बता देते। लेकिन कला के अध्ययन के लिए नियमित व्यवस्था नहीं थी। राम किंकर ने चित्रकला सीखने के साथ मूर्तिकला के क्षेत्र में अपना मार्ग स्वयं प्रशस्त किया। बांकुरा में मूर्तियों की रचना होते देखी थी और स्वयं भी उसका अभ्यास किया था। काम करने की लगन और धुन थी ही। बस हाथ से कला प्रस्फुटित होने लगी। शैक्षिक प्रशिक्षण का अभाव उनके लिए बरदान सिद्ध हुआ। हाथों ने नियमों से मुक्त जो कृति बना दी, वह उन्हें स्वीकार्य थी और जो पसंद नहीं आई तोड़ दी। उनकी



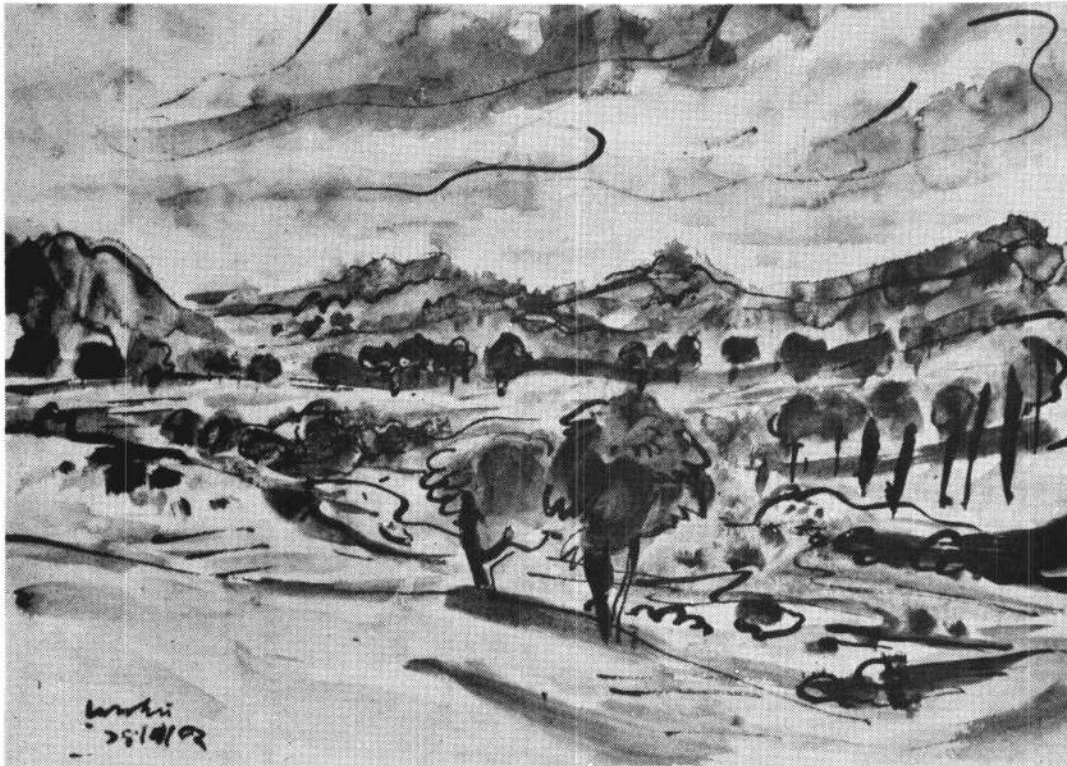
कुछ कृतियों ने शांतिनिकेतन में तूफान मचा दिया था। क्योंकि वह कला भवन की परम्पराओं से भिन्न थीं किन्तु उनके संबंध में कोई विवाद खड़ा नहीं हो सका। रवीन्द्र नाथ ठाकुर (1861-1941) और नंद लाल वसु ने परम्पराओं के विरुद्ध प्रयोग करने की राम किंकर को अनुमति दे रखी थी। इसीलिए राम किंकर द्वारा विश्व कवि की अति यथार्थवादी शैली में बनी मुखाकृति को कोई भी भद्दी कहने का साहस नहीं कर सका क्योंकि रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने उसे देखकर राम किंकर से कहा था कि अब पीछे पलट कर मत देखना, बस आगे बढ़ते जाना।

मूर्तिशिल्प के क्षेत्र में राम किंकर का मौलिक योगदान है। मूल रूप से वह भारतीय परम्परा और पश्चिमी आदर्श से हट कर अपने नियमों को स्वयं गढ़ते हुए अपनी संरचना प्रस्तुत करते थे। उन्होंने विषयवस्तु और रूप दोनों को ही महत्व दिया। मन में रचना की रूपरेखा उभरने के बाद वे दृढ़ संकल्प से प्रेरित होकर खुले आकाश के नीचे तपतपाती धूप में स्टू हैट लगाए मूर्ति निर्माण में व्यस्त हो जाते। दिनभर की कड़ी मेहनत पर जब रचना से संतोष नहीं मिलता तो प्रातः उसे तोड़ देते और नए सिरे से काम करते। कितनी बार नंद लाल वसु उनकी लगन व साधना देखकर मंत्रमुग्ध हुए। तभी तो गुरु को अपने शिष्य से उसके विद्रोह के बावजूद गहरा प्यार था।

राम किंकर की कलाकृतियां विशाल हैं। खुले आकाश के नीचे जहां बनीं थीं वहीं आज भी विद्यमान हैं। उन्होंने कलाकृति को परिवेश अथवा वातावरण से नया आयाम दिया। वह पेड़ों के झुरमुट में दूर से पहचानी जा सकती हैं। सूर्य के प्रकाश से हटाकर ड्राइंग रूम में रखने पर वह निस्तेज हो जाएंगी, उनका सौंदर्य खो जाएगा किन्तु यदि इठलाती हवा के झोंकों में देखा जाए तो उनका

अदभुत रूप प्रभावित करेगा। मूर्तिशिल्प को प्रकृति अथवा परिवेश से सामंजस्य करने की राम किंकर की अपनी कल्पना थी। इसको आउटडोर स्कल्पचर अथवा एन्वायरनमेंटल स्कल्पचर की संज्ञा दी गई है। इस प्रकार के मूर्तिशिल्प में वे अग्रणी थी। ऐसी कृतियों में 1930 के दशक में बनी 'सुजाता' और 'संथाल परिवार' कालजयी रचनाएं हैं।

मूर्ति कला की रचना में भी राम किंकर का अपना निराला और अनोखा तरीका था। उस समय पेरिस प्लास्टर आयात किया जाता था। कलकत्ते से शांतिनिकेतन जाने पर और महंगा पड़ता। राम किंकर ने पेरिस प्लास्टर के लिए नया विकल्प निकाला। बचपन में बांकुरा में दुर्गा और काली की प्रतिमाओं के निर्माण में मदद करते ही थे। बस उसी ढंग को अपनाते हुए उन्होंने साधारण बांस का ढांचा तैयार किया। उस पर गीली मिट्टी व गोबर का प्लास्टर किया। बाद में तारकोल का जामा पहनाया। इसी के साथ लोहे की छड़ों का इस्तेमाल किया। तत्पश्चात गांव के निकट कलकल बहती खोवाई नदी के रोड़ों में सीमेंट का मिश्रण किया। ईट, रेत, चूना, सीमेंट, मिट्टी, बजरी, प्लास्टर, पत्थर, जो भी हाथ लगा उसने कुशल हाथों से आकार का रूप पा लिया। भारत में इस प्रकार के प्रयोग में राम किंकर सबसे अग्रणी रहे हैं। तकनीकी दृष्टि से मूर्तिकला के लिए यह नए माध्यम हैं। इस श्रृंखला की राम किंकर की पहली कृति पतली छरहरे बदन की वही सुजाता की प्रतिमा है। बाद में आदम कद से बड़े आकार की संथाल परिवार बनी। नई दिल्ली के संसद मार्ग पर स्थित रिजर्व बैंक की इमारत के मुख्य द्वार पर राम किंकर द्वारा निर्मित यक्ष और यक्षिणी की विशाल मूर्तियां पथिकों को बरबस अपनी ओर खींचती हैं। राम किंकर को सार्वजनिक स्थल के लिए मूर्ति बनाने



एक भू-दृश्य



प्रसूति

का एकमात्र यही आर्डर मिला था। इसमें उन्हें कोई विशेष लाभ नहीं हुआ बल्कि मुफ्त की परेशानियां मोल लेनी पड़ीं।

इसमें संदेह नहीं है कि राम किंकर को मूर्तिशिल्प में अधिक संतोष मिलता पर वे चित्रकला में भी दक्ष थे। उन्होंने सभी माध्यमों में चित्र बनाए हैं—जैसे जल रंग, तैल रंग, खड़िया तथा छापाकारी। बस हाथ उठने की बात होती। कला भवन में वाश शैली ही प्रचलित थी, तैल रंग वर्जित था। किन्तु राम किंकर कुछ हट कर काम करने में विश्वास रखते थे अतः उन्होंने तैल रंग का भी प्रयोग किया। इससे बंगाल शैली के प्रवर्तक अवनीन्द्रनाथ ठाकुर (1871-1951) तथा कुछ और अधिकारीगण नाराज थे। लेकिन कुछ कह नहीं सकते थे। रवीन्द्रनाथ की मृत्यु (1941) के बाद अवनीन्द्रनाथ ठाकुर विश्वभारती के आचार्य बने। वे कलकत्ता से आकर शांतिनिकेतन में रहने लगे। उन्होंने आते ही राम किंकर को आड़े हाथों लिया। वाश पद्धति में राम किंकर की परीक्षा के लिए सीमाबद्ध अवधि में कलाकृति बनाने की चुनौती दी तथा स्वयं भी चित्र बनाया। निर्णायक नन्द लाल बसु बनाए गए। निर्धारित समय पर दोनों कलाकारों के चित्र तैयार थे। कहने की आवश्यकता नहीं है कि वाश टेकनीक के महान आचार्य स्वयं हार गए।

कला भवन में पहले चित्रों में हिन्दू देवी-देवताओं का स्थान मिलता था किन्तु शनैः शनैः दैनंदिन जीवन के चित्रांकन को प्रमुखता मिलने लगी। कलाकार प्रकृति से प्रेरणा लेने लगे। अब उन्हें आकाश, समुद्र और पर्वतों में जीवन दिखाई देने लगा। राम किंकर पहले से ही विद्रोही प्रवृत्ति के थे। वह जो कुछ भी देखते रंगों के माध्यम से बांध देते। सबसे अधिक प्रकृति से आंख मिचौली करते। आंगन में खिलता पुष्प, नन्हीं-नन्हीं पत्तियों का नन्हा पौधा, झूमते पेड़ और अकड़े तने, इठलाती टहनियां,

विश्राम करती संधाल नारियां, कार्यशील मजदूरिनें, नंगी देह व खुले बाल, तपतपाती धूप में सिर पर पोतली, गीले कपड़े आधे पहने और आधे सुखाते, सारांश में जीवन के कितने ही रूप राम किंकर की कलाकृतियों में उभरे हैं। वे चित्रकला में भी सभी माध्यमों में पारंगत थे। लेकिन उन्हें चित्र के स्थान पर मूर्ति बनाने में अधिक आनन्द मिलता। मूर्ति को वह चारों ओर से देख सकते थे, चित्र को केवल एक ओर से। मूर्ति को प्रकाश में खुले आकाश के नीचे गर्मी और सर्दी की उपेक्षा करते हुए गढ़ सकते किन्तु चित्र के साथ यह सब ताम-झाम नहीं था। खुले आकाश से प्यार करने वाले को इसलिए मूर्ति निर्माण ज्यादा रुचिकर था।

राम किंकर ने आधी शताब्दी से अधिक समय शांतिनिकेतन में बिताया। प्रारंभिक वर्षों में वहां का वातावरण उनकी शक्ति रहा किन्तु धीरे-धीरे वही वातावरण उनकी वेदना का कारण बना। मनमौजी राम किंकर को विश्व भारती पहुंचने पर वहां का परिवेश अपने स्वभाव के अनुकूल लगा। लोगों में 'उदार भावना' देखी, मानवता में गहरी आस्था देखी। चहुंओर कविता, नाटक और संगीत की हिलोरें अनुभव कीं। इन गुणों ने उनकी महत्वाकांक्षाओं को संतुष्ट किया और वे कला की साधना में रम गए। किन्तु समय बलवान है। लीक से हट कर प्रयोग करने की इच्छा शक्ति ने उनको शांतिनिकेतन की मुख्य धारा से अलग कर दिया। राम किंकर की जीवन शैली, कार्य शैली और विषय शैली कला भवन के मानदंडों से अलग हो गई। उनकी सराहना के द्वार बंद हो गए। वह अपनी ही निराली शैली के विकास में लीन हो गए। कला भवन में जब सब वाश टेकनीक में सुरुचिपूर्ण लघु चित्र बना रहे थे, राम किंकर के हाथ और उनकी तूलिका सुस्पष्ट, चौड़े और विस्तृत स्पर्शों से बड़ी अकृतियों अथवा चित्रों में व्यस्त थीं। आदर्शकृत और संकल्पनात्मक विषयों के स्थान पर सशक्त यथार्थवाद उनकी कला में प्रवेश पा रहा था। साथ ही कला में तैल रंगों का अधिकाधिक प्रयोग कला भवन के नियमों का खुलमखुल्ला विद्रोह था। उनके तैल चित्र वर्षों उनकी गोशाला में पड़े रहे। प्रशंसक के मांगने पर वे उसे भेंट कर देते। जो बचे वे दीमकों को प्यारे हो गए। ऐसी स्थिति में राम किंकर की मानसिक वेदना ने उन्हें शांतिनिकेतन के विशिष्ट समाज से अलग कर दिया। वह धीरे-धीरे अपनी आदत से अधिक एकाकी होने लगे। विश्व भारती के निकट के गांवों में निकल जाते और वहां बेफिक्री से ऊंचे स्वर में गाकर अपनी वेदना को हल्का करते। संधाली कृषक परिवारों में उनको सुख मिलता और संधाली समाज के निष्कपट वातावरण में शांति। ऐसा प्रतीत होता कि वे उस संस्कृति में लौट जाना चाहते थे जहां उनका जन्म हुआ था और जहां उनका बाल्यकाल बीता। समय बीतने के साथ कला के प्रति उदासीनता होती गई और मदिरा ने राम किंकर पर अपना आधिपत्य जमा लिया। ऐसी स्थिति में पहुंच कर क्या कोई उभर सकता है?

राम किंकर ने कभी सम्मान की प्रतीक्षा नहीं की। आत्म प्रचार और आत्म प्रशंसा के चक्कर में नहीं पड़े। पुरस्कार की कामना नहीं। धनोपार्जन में रुचि नहीं ली। जीवन की सुविधाओं की ओर

चिड़ियाएं

यादवेन्द्र 'शर्मा' 'चन्द्र'

बचपन से ही उसके पति को चिड़ियाएं पालने का जबरदस्त शौक था। लगभग बीस चिड़ियाएं उसके पति ने पाल रखी थीं, वे भी विभिन्न जातियों व रंगों की। उसका पति सुबह उठकर उन चिड़ियाओं को दाना-पानी देता था। नहलाता था। पुचकारता था। सहलाता था। बातें करता था। चूमता भी था। कई चिड़ियों के पंखों की जांच करता था। यदि किसी चिड़िया के पंख उड़ने के काबिल हो गए होते तो उन्हें वह निर्ममतापूर्वक काट डालता था। तब वह एक जल्लाद-सा लगता था और उसकी हरी चौकड़ी की लुंगी और सैंडो बनियान उसके जल्लाद होने का मानों समर्थन देती थी। उसका पति गंजा था, मूंछें तलवार कट और बदन कसा-कसा। वह प्रायः अपनी बाईं भौंह नचाता रहता था।....

उसकी पत्नी पूछा करती थी, "इन चिड़ियाओं को पालने से क्या फायदा है? क्या इनकी महत्ता मनुष्यों से अधिक है?"

उसका पति उत्तर देता, "शौक में लाभ-हानि का प्रश्न नहीं उठता। फिर आदमी जिसे प्यार करता है, उसके लिए उसका महत्व बढ़ जाता है।"

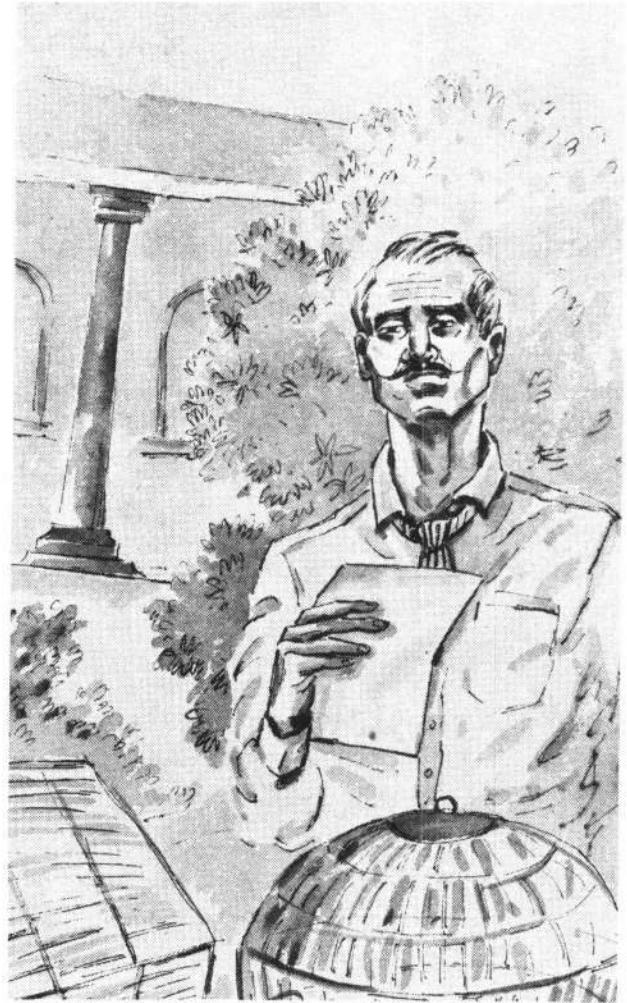
"ये चिड़ियाएं।" उसने इस शब्द को ऐसे कहा जैसे वह अपनी आत्म-पीड़ा को बाहर निकाल रही है, "मेरी सौतेली बनती जा रही हैं!"

"ऐसा सोचा जा सकता है। पत्नी को भले ही कड़वा सच बोलने की स्वतंत्रता न हो पर सोचने की स्वतंत्रता तो है ही।" उसने दृढ़ता से कहा, "पर यह सही है कि ये चिड़ियाएं मुझे सबसे अधिक प्यारी हैं।"

"क्या यह ट्रेजडी नहीं कि तुम मुझसे ज्यादा इन्हें प्यार करते हो?"

उसने सिगरेट का कश लिया। ऊपर की ओर देखा—नीला आकाश बरसात से धुल गया था। बहुत साफ था। उसमें एक गिद्ध अकेला उड़ रहा था।

उन सबको अपनी दृष्टि में समेटते हुए उसने गोलाकार धुआं छोड़ा और अत्यंत ही सहज स्वर में कहा, "इसमें ट्रेजडी-कामेडी की क्या बात है? यह तो मानवीय दुर्बलता है कि आदमी जिसे प्यार करता है, उसे प्यार करता ही है। प्यार करने जैसी चीज तो नहीं है, वह तो हो जाता है—आंतरिक दबावों के कारण।"



"मगर मैं आपकी पत्नी हूं।" उसने वाक्य पर जोर देकर कहा।

"ओह!" उसने उठते हुए कहा, "ये भी तो चिड़ियाएं हैं।"

और वह बाहर चला गया।

* * *

"मैं रात भर सो नहीं पाई।" उसने अपने पति को शिकायत भरे लहजे में कहा।

"इस पृथ्वी पर अनेक लोग हैं जो रात को सो नहीं पाते। कहीं अनिद्रा का रोग तो तुम्हें नहीं हो गया है?"

"ना। नींद आपकी इन चिड़ियों की वजह से नहीं आई?"

"कैसे?" उसने आश्चर्य से अपनी पत्नी से पूछा।

"इसलिए कि कल रात कोई बिल्ली इनके पिंजरे के पास आकर चक्कर काटने लगी थी और ये चिड़ियाएं भय के मारे चक-चक के साथ अजीब सी आवाजें निकालती रही थीं।" उसने निःश्वास ले कर कहा, "जानते हो, उनके शोरगुल से रात भर मैं सो नहीं पाई और तुम खरटि लेते रहे।"

उसके पति ने अपनी गंजी टांट पर अपनी हथेली फेर कर अर्थ भरी मुस्कान के साथ कहा, "तुम शराब की आलोचना करती हो न? अब मानो, शराब एक नियामत है? उसके कारण मैं गहरी नींद में सोया रहा। मुझे तो चिड़ियाओं की चक-चक सुनाई ही नहीं पड़ी। उसने सिगरेट सुलगा कर कश लिया। फिर दीवार पर लगे बिच्छू को मुंह में दबाए छिपकली के खिलौने पर नजर जमा कर वह बोला, "मैं इस सूक्ति से काफी सहमत हूँ कि ईश्वर जो करता है, वह अच्छा ही करता है।"

वह चौंक पड़ी। घुटकर बोली, "वह कैसे?"

उसने उसके कंधे पर हाथ रख दिया और अपनेपन से कहा, "कल गली में चोर घुस आए थे। लाला भगवानदास के यहां चोरी कर गए। शायद हमारे यहां भी चोरी कर सकते थे। पर तुम्हारे जागने और चिड़ियाओं की चक-चक ने चोरों को हमारे घर में नहीं घुसने दिया।"

वह चिढ़ कर बोली, "क्या वे चोर हमारे यहां चोरी इन चिड़ियाओं की करते? इसके सिवाय हमारे घर में है ही क्या?"

"गैस-सलेण्डर तो है। वह भी तो ब्लैक में बिकता है।"

वह कुछ देर चुप रही। सोचती रही। उसका पति अत्यंत ही सहज भाव से सिगरेट पी रहा था। कभी-कभी वह उसके तराशे हुए जिस्म पर उड़ती निगाह डाल लेता था।

वह तमक कर बोली, "मैं कहती हूँ कि इन चिड़ियाओं को घर से दफा करो। मैं....मैं अब इन्हें नहीं सह सकती।" वह क्षणिक मौन रह कर फिर बोली, "अब ये मेरे लिए असह्य होती जा रही हैं। मेरी सारी मानसिकता को इन्होंने डिस्टर्ब कर रखा है।"

उसने सिगरेट को जरा निर्ममता से बुझा कर कहा, "अजीब सी द्वेषता और सौतियाडाह हो तुम। व्यर्थ ही पीड़क स्थितियां पैदा कर रही हो।"

वह उठ कर बाहर गया। एक भूरी चिड़िया को पकड़ कर लाया और उसके पास बैठ कर उसके जिस्म को सहलाने लगा। जिस्म को सहलाते-सहलाते वह उसके पंख देखने लगा। फिर उन्हें नोचने लगा। वह अपने आप से बोला, "कितना ही ध्यान रखो पर किसी न किसी चिड़िया के पंख बढ़ ही जाते हैं, और वह उड़ने के काबिल बन जाती है।"

उसकी पत्नी जैसे आंतरिक व्यथाजनित घृणा से कांप गई। लगभग चीखती हुई बोली, "मत तोड़ो पंख। बढ़ने दो इन्हें। उड़ने दो इन्हें मुक्त आकाश में। ओह! अपनी ही चिड़िया को पंखहीन करते हुए तुम्हें धिन्न नहीं आती। दया करो इन पर। दया करो।"

उसने सप्रश्न अपनी पत्नी को देखा, फिर किंचित व्यंग मिश्रित स्वर में कहा, "हर काम में तो दया नहीं की जा सकती। ऐसा करके क्या मैं अपना नुकसान कराऊँ। फिर ये मेरी अपनी चिड़ियाएं हैं—उनके पंख रखूँ और न रखूँ यह मेरे सोचने का काम है।"

वह उसकी बात को अनसुना करके अपना सिर पकड़ कर चीखी, "इन चिड़ियाओं को यहां से ले जाओ। तू नहीं जानते कि

ये मुझे कितना सताती हैं। इन्होंने मेरे भीतर जलन और घृणा भर दी है।....मैं आपकी पत्नी हूँ....अर्धांगिनी हूँ, यह मेरा आदेश है।"

"मैं इस अर्थहीन आदेश का पालन नहीं कर सकता।" वह उठ गया। उसका चेहरा काफी गंभीर था। वह चित्रकार हुसैन के एक पोर्ट्रेट पर दृष्टि डाल कर बोला, "तुम आत्म-पीड़क होती जा रही हो। व्यर्थ ही तनावों में जी रही हो। अपने को इन चिड़ियाओं के साथ अधिक मत करो। सुनो....ये चिड़ियाएं मुझे अपनी जान से प्यारी हैं। पता नहीं, तुम खामखा इन्हें लेकर तिल का ताड़ बनाती रहती हो। यह जेलेसी निरर्थक है।"

"मैं अंतिम बार कह रही हूँ कि इन चिड़ियाओं को यहां से ले जाओ। मैं इन्हें घर में नहीं रहने दूंगी। इनसे इतना ही शौक है तो इनके लिए अलग घर ले लो पर भगवान के लिए इन्हें इस घर से ले जाओ।"

इस बार वह भी अपना धैर्य खो बैठा। उत्तेजित स्वर में बोला, "मैं इसके लिए दूसरा घर क्यों ले लूँ? यह घर मेरा है, मेरे पिता का है, पितामह का है। हां, यदि तुम्हें इन चिड़ियाओं से अलग रहना है तो अपने पिता को कह कर एक घर गिफ्ट में ले लो। उनके पास कई घर हैं।"

वह तिलमिला कर बोली, "ओह! तुम इतने नीचे भी गिर सकते हो। इन चिड़ियाओं के लिए तुम मुझे अपने बाप से....। ऐसा करो कि तुम स्वयं उनसे क्यों न मांग लेते?"

"मुझे कोई जरूरत नहीं।" उसके पति ने शांत-संयत स्वर से कहा, "देखो, जैसा जीवन चल रहा है, उसे चलने दो। चिड़ियाओं के प्रश्न को प्रेस्टीज इश्यू मत बनाओ। यह जान लो कि मैं चिड़ियाएं इसी घर में रखूंगा। तेरी जिद्द तो मेरी जिद्द।"

वह बिना उत्तर सुने छत पर चला गया।

* * *

उस दिन वह अपने पति के घर में घुसते ही झल्ला पड़ी, "आप कहां गए थे?"

"चिड़ियाओं के अस्पताल।"

"क्यों?"

"मेरी दो चिड़ियाएं बीमार हो गई थीं। उन्हें भर्ती कराने।"

उसने तुनक कर कहा, "चिड़ियाओं को भर्ती कराने गए और मेरे पेट में तीन दिनों से जो दर्द है, उसकी तुम्हें चिंता नहीं।"

उसने उसे समझाते हुए कहा, "डार्लिंग!"

"मुझे डार्लिंग मत कहो। यह शब्द तुम्हारे मुंह से अच्छा नहीं लगता।" उसने आरोपात्मक स्वर में कहा, "तुम्हारी डार्लिंग तो ये चिड़ियाएं हैं।"

"तुम से बहस करना बेकार है। व्यर्थ ही आत्मसम्मान, आत्महनन और आत्म पीड़ा की स्थितियों में घिरी रहती हो।" उसने उसे तनिक घूर कर कहा, "सुनो, हमें अपना कर्तव्य निभाना चाहिए।"

"मतलब?" वह चौकी।

"मैं तुम्हारे जीने की सारी व्यवस्था करूंगा और तुम मेरी। मैं कमाऊंगा और तुम मुझे खिलाओगी। अब हमारे बीच इतना ही, शेष रहने की स्थिति बन रही है।"

"इसका मतलब यह है कि तुम इन चिड़ियाओं के लिए मुझे छोड़ सकते हो। इस घर का सर्वनाश कर सकते हो।"

"नहीं, ऐसी बात नहीं है। मैं तो चाहता हूँ कि हम एक दूसरे के आनंदों में दखल न दें। व्यक्तिगत इच्छाओं को स्वतंत्रतापूर्वक जिएं। चिड़ियाओं को पालना मेरे बचपन का शौक है। यदि मेरे मां-बाप जीवित होते तो मैं इसका प्रमाण दे सकता था।"



उसने उसकी बात का कोई उत्तर नहीं दिया। केवल आग्नेय नेत्रों से देखती हुई अपने कमरे में चली गई।

* * *

आज दफ्तर से लौटने पर उसने देखा कि उसके सारे पिंजरे खाली हैं।

वह चिंता, आवेश और क्रोध के मिले-जुले स्वर में चिल्लाया, "मेरी चिड़ियाएं कहाँ हैं? मेरी चिड़ियाएं कहाँ हैं, अरी सुनती हो, मेरी चिड़ियाएं कहाँ हैं?"

उसने सारा घर खोज डाला, पर उसे अपनी पत्नी नहीं मिली। उसके बदन में आग लग गई। खाली पिंजरे उसे तिलमिला रहे थे।

सहसा उसकी दृष्टि एक कागज पर पड़ी। उसने झपट कर उसे उठाया। उसकी पत्नी की लिखी चंद पंक्तियाँ थीं। उसने उन्हें पढ़ना शुरू किया— "मैं यह घर छोड़ कर जा रही हूँ। कुछ बातें अमहत्वपूर्ण होने के बाद भी महत्वपूर्ण बन जाती हैं और आदमी के समस्त अस्तित्व को चुनौती-सी देने लगती हैं।...तुम्हारा चिड़ियाओं का पालन कुछ ऐसा ही मुझे लगा। बार-बार मना करने के बाद भी तुमने मेरी मन की न करके अपने मन की की। इसलिए मैं यह घर छोड़कर जा रही हूँ। मैं जानती हूँ कि तुमने चिड़ियाओं के पंख काट डाले हैं पर मुझे विश्वास है कि उनमें से चंद चिड़ियाएँ तुम्हारी पकड़ से अवश्य दूर हो जाएंगी। मैं उन्हें दूर बहुत दूर जंगल में छोड़ आई हूँ जहाँ से उन्हें वापस लाना असंभव तो नहीं पर बहुत कठिन है। सच स्वामी, पिंजरे में बंद चिड़ियाओं को देखकर मुझे लगता था कि मैं बंद हूँ। हर चिड़िया मैं स्वयं थी। तभी तो उनकी मुक्ति के लिए तड़फड़ा रही थी। आज लग रहा है कि मैं स्वाधीन हूँ।

उसने क्रोध में उस कागज को मसोस कर फेंका। फिर वह पिंजरों को उठा-उठा कर दीवार से टकराने लगा। □

आशालक्ष्मी, नया शहर
बीकानेर-334001 (राजस्थान)

दूरी पाटते शब्द

सिद्धनाथ सागर

चिड़िया, पेड़, पहाड़ और आकाश

अरविन्द बेलवाल

शब्दों के वही अर्थ नहीं होते
टांग दिए गए हैं जो
सफेद कोठरियों में
शब्दखोरों द्वारा।

व्याकरण की घनी छांव में ही
लोग शब्दों को परखें
रचें/जिएं
ताकि तुम्हारे पेचीदा व्याकरण में
कोई तब्दीली नहीं हो
काफी सहज तरीका
खोजा है
तुम्हारे शोधार्थियों ने
शब्दों को नपुंसक बनाने का।

तुम्हारी स्मृतिपटल से अक्सर
फिसल जाती है यह बात
कि हर शब्द
जिंदा मांस का धड़कता टुकड़ा है
अपने आप में एक पूरी जिंदगी समेटे

शब्द व्याकरण को काटता है/मांजता है/गढ़ता है
जबकि तुम्हारी नीयत
शब्दों को हथियाने की है
उनकी सांसें अपनी मुट्ठी में बंद कर
बेजान बनाने की है।

भूलते हो/शब्द
धरती को हथेली पर थामे
भूख के खिलाफ खड़े हाथ होते हैं
शब्द सागर-सी गम्भीरता लिए
काल को बदलने की आवाज होती है
शब्द भीड़ को चीर/भयावह जंगल के बीच
रास्ता बनाने वाले औजार होते हैं
जबकि तुम्हारी नीयत
शब्दों को हथियाने की है
उनकी सांस अपनी मुट्ठी में बंद कर
बोझ बनाने की है।

लेकिन ऐसा नहीं होगा/शब्द खुद-ब-खुद
महसूसने लगे हैं अपनी ताकत
शब्द समझने लगे हैं
षड्यंत्र की चाशानी में डूबी भाषा
शब्द पाटने लगे हैं आपस की दूरी। □

कभी-कभी
लगता है कि
मैं एक चिड़िया हूं,
पेड़ की फुनगी पर झूले लेती हुई।
चोंच में
एक तिनका थामे,
खिड़की, कमरे और आंगन में
इधर से उधर तक
फुदकती हुई,
अपनी पुलक से
देह/मन में
पुलक जगाती हुई
चिड़िया।

या कि :
एक पेड़ हूं,
ऊंचे पहाड़ों को
अपनी जड़ों से थामे हुए
हवा में इठलाता
सदा ऊपर उठता हुआ
पेड़।

या कि :
एक पहाड़ हूं,
आंधी-तूफानों में निश्चल।
योगियों की तरह
समाधि में लीन
पर भीतर-ही-भीतर
सतत प्रवाहित
पहाड़।

या कि :
आकाश हूं,
सीमाहीन,
अपने अनन्त विस्तार में
विश्व को समेटता हुआ
आकाश।

चिड़िया
पेड़
पहाड़ और आकाश....
ओ मेरे परम पिता!
मैं
चिड़िया, पेड़, पहाड़ और आकाश
एक साथ होना चाहता हूं। □

द्वारा हरीश बीड़ी की दूकान, कचहरी रोड
बेगूसराय-851101 (बिहार)

157, आवास विकास कालोनी
सिविल लाइन, बरेली-243001



पुरखों का घर

स्नेहलता चट्टोपाध्याय

जहां सभी रहते थे
अब वहां नहीं है कोई
नहीं है अब वहां
रहने का कोई अर्थ।

जो कुछ भी है वहां
उस पर हक है
सिर्फ लता और झाड़ी का।

मेरी मां का घर है
परित्यक्त, अंधेरे का बंदी
वहां दिन-रात सुनाई पड़ती है
कोने-कोने से पेंडुकी की आवाज
पत्ते झरते रहते हैं
रोशनी हो जाती है धूमिल।

दूर, बह रही नदी किनारे
जाग रहा है मंदिर का शिखर
वहां रहते हैं ईश्वर
बड़ा अकेले—निस्संग
उनके लिए अब और
नहीं जलते हैं
मेरी मां के दीपक।

दीर्घ हुई जाती है रात
और गहराती जाती है।
कितना कष्ट होता है
यह वेदना मन में असहनीय होती है
पुरखों के घर का मोह
मां के स्नेह से भी बड़ा हुआ जाता है। □

अनुवाद : मुनमुन सरकार
द्वारा श्री टी. के. सरकार
जी/6, क्वार्टर नं. 135
(सेन्ट्रल गवर्नमेन्ट क्वार्टर्स)
पो. आ.—नारकेलडांगा, फूलबागान
कलकत्ता-700054

उपकरण भर

श्रीकान्त जोशी

पत्थर है
यह पत्थर है
यह माथे का घाव बन सकता है
और मन्दिर की बुनयाद भी
यात्रा का संकेत बन सकता है
ऊंचाई का आल्हाद भी
मनौती का देवता बन सकता है
ताजमहल का मीनार भी
वर्तमान की खामोशी बन सकता है
अतीत का चित्कार भी।
पत्थर है
यह किसी की करुणा नहीं सहेज सकता
किसी बीज का उत्सव नहीं बन सकता
उपकरण भर है
अपने से इसका होना नहीं है।
और न है, नहीं होना, अपने से
पत्थर है। □

जवाहर गंज खण्डवा-450001 (मध्य प्रदेश)



कटान के खिलाफ

रतीनाथ योगेश्वर

झुक गए हैं
बिजली के खम्भे
तार समेत।
लेट गए हैं
पसर गए हैं
पेड़ सड़क पर।
नहीं है ये
भूकम्प या आंधी की
करामात।
पेड़
सड़क पर
बिछ गए हैं
अपनी कटान के खिलाफ। □

मुख्य अभियंता (परियोजना)
माल रोड (विपरीत दून स्कूल)
देहरादून, कैंट-248003

कविता है वह संधि रेखा

दुर्गाशंकर त्रिवेदी

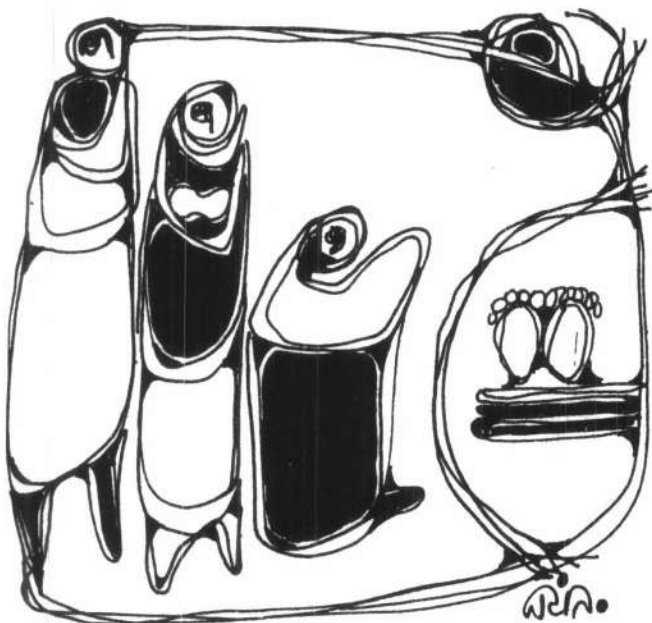
महक रोटी की

विभा जोशी

बहुत ही भोले हो मित्र मेरे
तान रहे हो प्रश्न शर
मेरी चेतना के मर्मस्थल पर
पैनी निगाहों से घूरते हुए
पूछते हो तुम अल्हड़पन से
कविता किस चिड़िया का नाम है।
कविता वह सुरंग है
जिसके भीतर से मनुष्य
एक विश्व को छोड़ कर
दूसरे विश्व में प्रवेश करता है।
मित्र! कविता है
अंधकार और प्रकाश की
वह संधि-रेखा
जहां पहुंच कर मानव मन
परिचित विश्व को पीछे छोड़
अपरिचय से परिचय प्राप्त करता है।
आत्म-मंथन है कविता
जिसका नवनीत देता है
जीवन को सतत नवोन्मेषी ऊर्जा।
अंधेरी सुरंग से
निकल कर ज्योतिष पथ पर
दौड़ लगाना है कविता। □

राजस्थान पत्रिका दैनिक

केसरगढ़, डाकघर-जयपुर-302004 (राजस्थान)



वह उस पेड़ के नीचे
फूलों से भरी टोकरी
लिए बैठती है रोज
और गूंथती है
वेणियां, मालाएं—
लाल, पीले और सफेद
रंगों की।
उसकी फूल मालाएं
चढ़ाई जाती हैं
देवी-देवताओं पर
किसी नवयौवना के
श्रृंगार पर
और समारोहों की सज्जा में।
उसके तेजी से चलते हाथ
गूंथते हैं फूल
एक के बाद एक
और वह उन फूलों में
गरम रोटी की
महक ढूंढती है। □

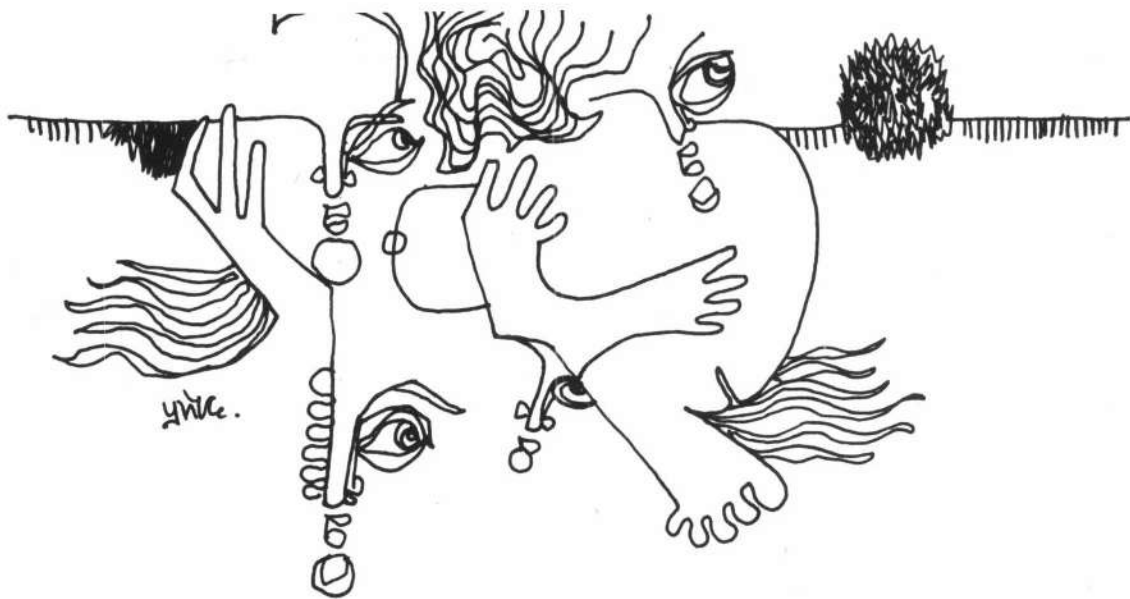
सैक्टर-4/84, रामकृष्ण पुरम
नई दिल्ली-110022

सफर उम्र का

आर. एस. रमन

मन मंदिर-सा, तन मस्जिद-सा
जीवन होता गुरुद्वारे-सा।
लहू-लुहान न होती धरती
धर्म न होता बंटवारे-सा।
नफरत की आंधी न उमड़ती
मानवता का कत्ल न होता,
वैमनस्यता नहीं पनपती
जन्म घृणा का कभी न होता।
कदम-कदम पर प्यार विहंसता
किसी गांव के चौबारे-सा।
करते काम बराबर सब मिल
कोई छोटा-बड़ा न होता,
भूखे-नंगे लोग न रहते
जाति-पाति का जहर न होता
हो जाता तब सफर उम्र का
हंसते-गाते बंजारे-सा। □

एफ-144, सैक्टर-20, नौएडा



शब्द चाहते हैं....

गीत

सुखबीर विश्वकर्मा

रमेश चंद्र पंत

शब्द : संवाद बन कर
उतर जाना चाहते हैं
आदमी के भीतर;
भीतर : जहां एक निःसीम कोलाहल है
मगर, शांति नहीं।
शब्द : गोताखोर बनकर
डूब जाना चाहते हैं
सिंधु की गहराइयों में
एक अडिग विश्वास लेकर
खोजने के लिए एक अनमोल मोती;
अनमोल मोती : जिन्हें इस उदास आसमान में
हांका जा सके
ताकि, धरती सदा ही
जगमगाती रहे
मुस्कुराती रहे।
शब्द : एक नया आकाश बनकर
ओढ़ लेना चाहते हैं
समूचे ब्रह्माण्ड को
ताकि, आग से झुलसते हुए लोगों को
छवि मिल सके।
शब्द : वेद के मंत्र बन कर
हो रहे हैं गुंजरित—
धरती और आसमान के बीच
इन्हें आप बोलने से नहीं रोक सकते;
वे जगाना चाहते हैं हम सब को
नई सदी के लिए। □

ना गासाकी
हिरोशिमा को
लगता है हम भूल गए हैं।
होंगी फिर विकलांग पीढ़ियां
रौरव नरक भुगतना होगा,
संशय की अंधी खोहों से
हर क्षण हमें गुजरना होगा।
भरी दुपहरी में
'सीलिंग' से
लगता है हम झूल गए हैं।
गर्म तवे पर जल-बूंदों-सी
धरा भाप बन उड़ जाएगी,
विकृतियों की व्यथा-कथा से
कथा सभी की जुड़ जाएगी।
धुंध-कुहासे
चिरायंध को
लगता है हम भूल गए हैं।
अणुधर्मी यह राजनीति ना
जाने क्या-कुछ कर बैठेगी,
सिर धुनती-सी व्यग्र हवाएं
फिर लगता रह-रह सिसकेंगी।
नागासाकी
हिरोशिमा को
सच! लगता हम भूल गए हैं। □

दैनिक बैनगार्ड
37, कनाट प्लेस, देहरादून-248001

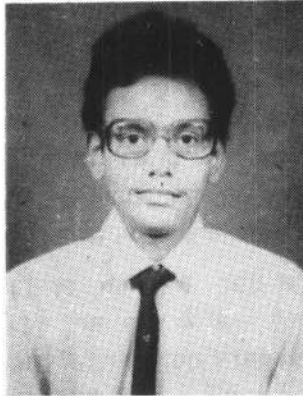
पंत क्लिनिक, द्वाराहाट
अल्मोड़ा-263653 (उत्तर प्रदेश)

वैहस्ताक्षर

अब बिगुल बजने की बारी है

नाम : आर. के. नीरद
शिक्षा : स्नातक (कला), स्नातक-विधि (द्वितीय वर्ष)
सम्प्रति : स्वतंत्र लेखन एवं पत्रकारिता
सम्पर्क : सम्पादक 'प्रतिभा', हाटपाड़ा, पाकुड़, जिला
साहबगंज (बिहार)-816107
आत्मकथ्य : कविता मेरे 'मैं' का दर्पण है, मेरे होने का अपना
अहसास है।

सुना, नगरों में खंदकें
खुद रही हैं
घरों के दीए
बुझ रहे हैं
हर किसी के हाथों में
हैं हथियार
और आंखों में है
खून
सब पर एक-सा है
जुनून
होंठ सभी के
सिले हैं
देवता के घर
अब किले हैं
बस यही एक
बाकी था
कि रक्षक मात्र
एक खाकी था
अब हर रंग में
रक्षक है
बिना रंग का
तक्षक है।
छोटी टुकड़ियों में
अभ्यास जारी है
अब आखरी बिगुल
बजने की बारी है। □



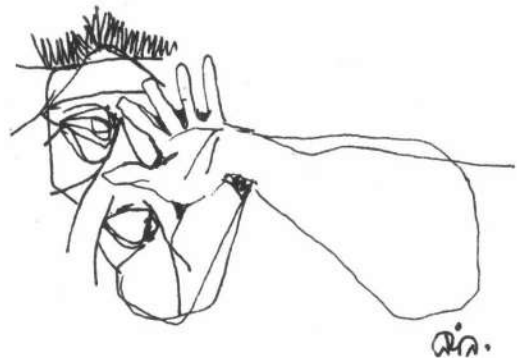
एक कविता लिखें

हम भी



नाम : चन्द्रप्रभा सारस्वत
जन्म : 21 जनवरी, 1956
शिक्षा : एम.ए. एम.फिल. पी.एच.डी. (हिन्दी)
सम्प्रति : केन्द्रीय अनुवाद ब्यूरो, नई दिल्ली में वरिष्ठ
अनुवादक
सम्पर्क : 166, कटरा मशरू, दरीबा कलां, चांदनी चौक,
नई दिल्ली-110006

इस सृष्टि के महाकवि ने
एक ही कविता लिखी है—
एक हृदय से दूसरे हृदय में,
पहाड़ों के शिखर-शिखर में,
पेड़ों के पत्ते-पत्ते में,
नदी की लहर-लहर में,
समुद्र के रह-रह होते गर्जन में,
आकाश के चांद-तारों में,
पतझड़, बसंत और सावन में,
वह मैंने पढ़ी
तुम भी पढ़ो
एक कविता लिखें हम भी
जो शब्दों की मोहताज न हो। □



कर्ज

पूर्वा श्रीवास्तव



ठक-ठक-ठक....दरवाजे पर छड़ी की खटखटाहट सुनते ही सुमना समझ गई—आज फिर वही साहूकार का बच्चा आ धमका। नासपीटा, रोज-रोज धमकाने चला आता है। वह उदास आंखों से भीखू के जर्जर शरीर को देखती रही। होंठों तक कौर ले जाता उसका हाथ जहां का तहां रुक गया। थाली को छूकर हाथ माथे तक ले जा कर उसने अन्न देवता को प्रणाम किया और अंगोछे में हाथ रगड़ता हुआ एक ठंडी सांस छोड़ कर बाहर निकल गया। उसका सूखा मुंह देख कर सुमना के कलेजे में हूक उठी—दिन भर कड़ी धाम में हाड़-तोड़ मेहनत करने के बाद सूखी रोटी, प्याज-नून से निगलने बैठा था कि यह जनम-जला पहुंच गया। मन ही मन साहूकार को कोसते हुए लालटेन उठाकर धीरे-धीरे झोपड़े के दरवाजे पर आ खड़ी हुई।

पीपल के बड़े से पेड़ के नीचे बने कच्चे चबूतरे पर एक टूटी खटिया पर वह उठगा हुआ था। उसके भारी-भरकम शरीर से टूटी खटिया एकदम नीचे धसक गई थी। हवा से कांपते पीपल के पत्तों से छन-छन कर आती रोशनी उसके चौड़े मुंह पर सांप सी रेंग रही थी। अंधेरे में भी उसकी बड़ी-बड़ी लाल आंखें अंगारों सी दहक रही थीं। चेहरे की क्रूरता को बढ़ाती बड़ी-बड़ी मूछों को वह हमेशा एक हाथ से मरोड़ता रहता था। चबूतरे के नीचे बैठा भीखू अपने कृश हाथों से उसके मोटे-मोटे पांव दबाता हुआ गिड़गड़ा रहा था, "हुजूर, माई-बाप....आप ही का सहारा है....जैसे तैसे रो रोटी जुटा रहा हूं। पेट काट कर भी करजा नहीं चुकेगा साहूकार जी....बस थोड़ी सी मोहलत और...."

"मोहलत....मोहलत....अरे साल भर का कह कर तूने करजा मांगा था और पूरे पांच साल गुजर गए....और क्या चाहता है तू....देख या तो सीधी तरह से मेरा कहना मान ले और अपनी ये जमीन खाली कर दे वरना...." साहूकार की गरजती आवाज सुमना को द्वार पर देखते ही एकदम बंद हो गई। उसकी गिद्ध दृष्टि लालटेन के धीमे प्रकाश में माथे तक घूघट काढ़े सुमना के सलौने मुख पर जम सी गई। उसकी लोलुप मुस्कराहट सुमना को सिहरा सी गई। वह लालटेन चबूतरे पर रख कर मानो उन नजरों से बचने के ही लिए धीरे से उसके पांव पर झुक गई, "पांय लागूं सरकार...." सुमना नीची दृष्टि किए बोली, "जैसे इतने दिन सबर किया थोड़े दिन और रुक जाएं सरकार....हम आपका करजा जैसे-तैसे चुका ही देंगे हुजूर...."

अचानक जैसे सांप रेंग गया हो। सुमना चिहुंक उठी। साहूकार का भारी हाथ उसकी पीठ पर रेंग रहा था। उसके चौंकने से मानो वह और दुस्साहसी हो उठा, बांह पकड़ कर उसे पास खींचता हुआ बोला, "तुम्हारी एक क्या हम तो हजार बात रखने को तैयार हैं लेकिन तुम मानो तब न सुमना रानी...." वह पान के साथ-साथ शब्द भी चबा रहा था जैसे। सुमना को लगा जैसे सांप फुंफकार रहा हो। उसके एक-एक शब्द, एक-एक हरकत का मतलब वह भली-भांति समझ रही थी।

तेजी से बांह झटक कर छोड़ते हुए वह पांच बरस के रामू को उठा कर तेजी से अंदर चली गई। साहूकार उसकी हरकत से एकदम उबल गया; आंखों में खून उतर आया, "नीच जात का ज्यादा घमंड ठीक नहीं है सुमना रानी....और सुन बे भिखारी की औलाद, मैं परसों फिर आऊंगा....और अब के मैं खाली नहीं लौटूंगा। तू भी सुन ले री नवाबजादी....थू...." साहूकार ने चुमला कर पिच से पान की पीक थूक दी और भारी-भारी डग रखता धम-धम करता हुआ चला गया।

थर-थर कांपती सुमना के सीने पर मानो कोई भारी चट्टान अड़ गई। उसने एक गहरी सांस छोड़ी। अपमान से चेहरा संबला गया था और आंखें छलछला गई थीं। अपमान और कर्ज के बोझ से भीखू मनो भारी कदम घसीटता धीरे-धीरे भीतर आया। लालटेन की रोशनी में उसकी परछाई अजीब सी लम्बी और भयानक लग रही थी। सुमना ने चौंक कर देखा—चंद ही क्षणों में भीखू की उमर जैसे दस साल बढ़ गई थी, चेहरा काला पड़ा था। माथे पर मोटी नस उभर कर उसके चेहरे को और भी तना हुआ

बना रही थी। वह चुपचाप कच्ची जमीन पर बिछे फटे बिछौने पर अंगोछा से मुंह ढंक कर पड़ा रहा। सुमना का मन भर आया। लालटेन बुझा कर वह भी रामू को पैताने लिटा कर भीखू की बगल में आ कर लेट गई। थोड़ी देर तक वह भीखू की गहरी-गहरी सांसों की आवाज अंधेरे में सुनती रही। फिर उसकी तरफ करवट लेकर बालों में उंगलियां फंसाते हुए धीरे से बोली, "सो गए...."

भीखू करवट बदल कर पड़ा रहा। थोड़ी देर बाद फिर उसने साहस जुटा कर पूछा, "सुनते हो!"

"क्या है?" भीखू ने रूखे स्वर में पूछा।

"कुछ नहीं।" उसके रूखेपन से आहत सुमना ने मान भरे स्वर में कहा और मुंह दूसरी तरफ करके पड़ी रही। कुछ तो साहूकार की वह धमकी और कुछ भीखू का यह रूखापन। दोनों ही उसे चुभ गए थे। वह देर तक पड़ी-पड़ी चुपचाप आंसू बहाती रही। उसे याद आ गया वह दिन जब वह ब्याह कर इस घर में आई थी। भीखू के बाबा ने बहू को असीसते हुए नन्हीं सी कमली को उसके हाथ थमाते हुए कहा था, "बहू! ये नन्हीं जान छोड़ कर इसकी मां चल बसी। मैं भी अब टूट चला हूं। बस, तू भीखू और इसे संभाल ले तो मेरे मन पर कोई बोझ न रहेगा। आज से यह कमली तेरी बेटी सी ही है।"

और सचमुच सतरह बरस की सुमना ने दो बरस की कमली को अपनी बेटी सा ही समझा। घर में वह सात भाई-बहनों में सबसे बड़ी थी इसलिए घर-गृहस्थी संभालना बखूबी आ गया था। उसके रूप और मधुर स्वभाव का चमरौटी भर में गुणगान होता था। भीखू तो जैसे उसके पीछे पागल ही हो गया था। उठते-बैठते सुमना....सुम्नो रानी की गुहार लगाता रहता था और उसकी हर आवाज पर सुमना लाज से लाल पड़ जाती—"छिः, जब देखो सुमना-सुमना....बाबा और मोहल्ले-टोले के लोग क्या सोचते होंगे।" वह प्यार से भीखू को झिड़कती। लाख अभाव होते हुए भी घर भर में सुमना की छलकती हंसी और नन्हीं कमली की खिलखिलाहट गूंजती रहती। और शायद इसी खुशी में बाबा भी दो-चार बरस और खींच गए।

लेकिन बाबा के मरते ही जैसे भीखू के सिर पर छाई बरगद की विशाल छाया हट गई और अब दुख-अभावों को झेलने की सारी जिम्मेदारी उसी पर आ गई। गांव के नारायण साहूकार के यहां बाबा हरबाहे का काम करते थे जिसके बदले में वह कभी सेर-दो सेर अनाज दया करके दे देता था लेकिन भीखू का मन बाबा के इस काम को अपनाने को नहीं करता था। कुत्ते की तरह दुरदुराते हुए दो-दो कौर की भीख मांगना उसके बस का नहीं था। लेकिन घर बैठे भी तो काम नहीं चल सकता था। जब लगातार दो जून चूल्हा ठंडा पड़ा रहा और भूख से कमली बिलबिला कर रो उठी तो भीखू को हार कर नारायण साहूकार के द्वार पर जाना ही पड़ा। दस बार बुलाने पर भी जो भीखू कभी पास न फटकता था, वह आज अपने आप दरवाजे पर आया हुआ था। उसकी विवशता भांपते साहूकार को देर न लगी थी और फिर शुरू हुआ था शोषण का सिलसिला। दिन-दिन भर कड़ी धूप में बैलों के साथ खेत में हल



जोतना, शाम को उन्हें चारा-पानी करवाना, साहूकार का हुक्का भरना, पांव दबाना तब कहीं जाकर बासी-तिबासी रोटी या सेर भर गेहूं मिलता था।

आधा पेट खा कर इतनी कड़ी मेहनत करते-करते भीखू जर्जर होता जा रहा था और कमली उसी सूखी रोटी के टुकड़े को खा कर तेजी से यौवन की तरफ कदम बढ़ा रही थी। उस दिन कमली और सुमना चबूतरे पर बैठी धूप सेंक रही थीं तभी उधर से नारायण साहूकार गुजरा था। उसकी लोलुप दृष्टि गांव के सबसे गंदे मोहल्ले—चमरौटी में इन दो पुष्पों पर पड़ी तो वह दंग रह गया। और जब पता चला कि ये भीखू की औरत और बहन हैं तो उसके होंठों पर कुटिल मुस्कराहट नाच उठी थी। उसने गहरी नजरों से दोनों को घूरा था और उसकी उस दृष्टि का अर्थ समझते ही सुमना कांप उठी थी। उसने कमली को भीतर ठेल दिया और स्वयं घूँघट काढ़ कर पल्ले में से देखती रही। उसकी यह हरकत साहूकार की आंखों से छिपी नहीं थी। वह गूढ़ भाव से सिर हिलाता हुआ चला गया।

शाम को भीखू का उतरा चेहरा देख कर वह चौंकी थी। और जब भीखू ने बताया कि साहूकार के घर में काम-काज ज्यादा होने की वजह से वह सुमना और कमली को थोड़े दिनों के लिए अपनी हवेली में काम करने को रखना चाहता है तो सुमना सब कुछ समझ गई। पूरी चमरौटी की औरतें गांव में खेतों पर काम करने जाती थीं लेकिन भीखू ने कभी भी उसे और कमली को बाहर काम करने नहीं भेजा था। लेकिन अब....अब क्या होगा?...अब तो ना भी नहीं करते बनेगा! उसने दोपहर की बात भीखू को समझा दी थी। और सब कुछ समझते ही भीखू की नसें फड़क उठी थीं, "साला हरामखोर! मेरे घर की औरतों पर आंख रखेगा तो आंखें निकाल लूंगा। समझता क्या है?"

आखिर समझा-बुझा कर सुमना ने ही उसे शांत किया था, "देखो! जैसे भी हो जल्दी से जल्दी कमली के हाथ पीले कर दो। बाकी बाद में देख लेंगे।" भीखू ने साहूकार से बहाना बना दिया था, "सरकार! आज तक तो उससे कभी काम करवाया नहीं। अब चार दिन की मेहमान है। अपने घर चली जाए तो हुजूर सुमना को भी बखत मिल जाया करेगा और आपका काम-काज देख लिया करेगी। चार पैसे का सहारा ही होगा।"

उसकी इस बात पर साहूकार मन ही मन जल-भुन सा गया था लेकिन सुमना का नाम आते ही वह शांत हो गया। चलो एक चिड़िया तो जाल में है, बच कर कहां जाएगी। और उसका जाल तब और मजबूत हो गया जब कमली के ब्याह के लिए भीखू को हर जगह से भटक कर आखिर साहूकार की ही शरण लेनी पड़ी। उसके ब्याह के लिए मनमाने सूद पर साहूकार ने दो हजार रुपये दिए थे। और कमली के ब्याह के अगले ही दिन से वह भीखू से बार-बार सुमना को हवेली भेजने के लिए कहने लगा। सब कुछ जानता-समझता भीखू जैसे-तैसे दिन-दिन करके टालता रहता था तभी सुमना का पांव भारी हो गया और उसे इकट्ठा कुछ समय का बहाना मिल गया। सुनते ही साहूकार बौखला उठा था, "साले घर में खाने को दाना नहीं है और अब आधी उमर में आबादी बढ़ाने चला है।"

सुन कर भीखू खून का घूंट पीकर रह गया था। लेकिन क्या करता, कहां जाता। सुमना की हालत बिगड़ जाने पर गांव के डाक्टर ने उसे शहर ले जाने को कहा तो फिर एक बार वह साहूकार के दरवाजे पर ही पहुंचा। जी-भर कर खरी-खोटी सुनाने के बाद हजार रुपये देते हुए उसने रुक्का लिखवा लिया था। उस समय तो सुमना की जान बचाने की चिंता थी सो भीखू कुछ भी करने को तैयार हो गया था। लेकिन बाद में वह सिर धुनता रह गया था—सिर छिपाने को जरा सी जगह थी वह भी उसके नाम लिख आया। अब इस नन्हीं सी जान को लेकर वे दोनों कहां जाएंगे? रोज सुबह-शाम की साहूकार की सुमना को हवेली पर बुलाने की जिद और भीखू की टालमटोल पर उसे निकाल बाहर कर देने की धमकी! आखिर भीखू कहां तक सहता। अब तो साहूकार उससे बैल की तरह काम लेता और जब जी में आता अनाज रोक लेता। कठोर परिश्रम के बाद भूख से ऐंठता पेट लेकर वह कहां तक चलता, बिस्तर पर पड़ गया। जला-भुना नारायण साहूकार अवसर पा गया। उसने साफ जवाब देते हुए कहा, "देख भीखू! अब तेरे बस का तो काम करना रहा नहीं। सुमना को भेज दे हवेली पर कुछ कूटने-पीसने का अनाज पा जाएगी और धोती-कपड़ा भी दे दूंगा। कभी-कभार रुपये-पैसे की मदद भी...."

लेकिन उसकी बात पूरी होती, इससे पहले ही भीखू चीख उठा था, "साहूकार जी! सुमना का नाम अब आप भूल कर भी मत लेना....मैंने करजा लिया है....इज्जत नहीं बेची....नहीं जाएगी सुमना...."

क्षण भर को साहूकार उसके क्रोध से सकपकाया, उसके बाद एकदम फट पड़ा, "साला....हरामी....हरिजन होकर इतनी ऐंठ दिखाता है। कान खोल कर सुन ले या तो मय सूद मेरे रुपये चुका दे वरना...."

"हां, हां जाओ! महीना भर बाद आकर अपना सारा पैसा ले जाना। और अब आईदा सुमना का नाम भूल कर भी मत लेना!" तेज ज्वर से तपता भीखू सुमना के रोकते-रोकते भी चीखता गया था। भय से थर-थर कांपती सुमना साहूकार की आग उगलती आंखें देख कर उसके पांव पकड़ कर लौट गई थी, "सरकार दया करें। बीमारी से दिमाग फिर गया है सरकार....बस जरा ठीक हो जाए, हम दोनों जनम भर आपकी गुलामी करेंगे हुजूर...." वह फूट-फूट कर रो पड़ी थी।

उस समय तो बकता-झकता नारायण साहूकार चला गया। लेकिन भीखू और सुमना का जीना हराम हो गया था। उसका करजा मय सूद तीन हजार का छः हजार हो गया था, कहां से चुकेगा....चार-छः दिन में जो सेर-पाव अनाज का जुगाड़ था, वह भी चला गया। एक-एक करके दिन कम होते जाते थे। बीमारी की हालत में भी भीखू किस-किस के दरवाजे पर जा कर नहीं गिड़गिड़ाया था लेकिन....आखिर जब नन्हा रामू और सुमना दोनों ही भूख से लस्त पड़ गए तब पास के कस्बे में गिट्टियां तोड़ने का काम पकड़ना पड़ा भीखू को। खाली पेट अशक्त हाथों में पकड़ा हथौड़ा मानो पत्थर पर नहीं उसके दिल पर पड़ता था। सिर धूम जाता था लेकिन ले देकर दो सूखी रोटी तो जुड़ जाती है। लेकिन वह भी उस मरे साहूकार के कारण नहीं खा पाते।

सुमना का हृदय रो उठा। उसने करबट बदलकर भीखू का नंगा कंधा पकड़ कर हिलाया, "ऐ सुनते हो! सो गए क्या?...."

"हूँ...." भीखू ने अनमना सा होकर पूछा।

"परसों तुम साहूकार के पैसों का इंतजाम कर लोगे न!" उसने आशा से छलकते स्वर में पूछा।

"पागल हो गई है तू तो...." भीखू उसकी नासमझी पर बौखला गया, "छः हजार रुपया कम होता है क्या? महीने भर से भटक तो रहा हूँ, क्या कर पाया?"

"तो फिर?...." सुमना का चेहरा बुझ गया, "परसों तो वो किसी तरह न मानेगा!"

"यही तो मैं भी सोच रहा हूँ.... राम जाने हमारी किस्मत में क्या लिखा है!" भीखू का स्वर भर्रा उठा, "सोचा था कमली की शादी करके सारे कष्टों से बच जाऊंगा पर...." उसने ठंडी सांस खींची। उठ कर बैठ गया, एक लोटा पानी पीकर बीड़ी सुलगा ली। सुमना लेटी-लेटी बीड़ी की कौंध में चमकता उसका चेहरा देखती हुई देर तक सोचती रही, "कैसी दसा बिगड़ गई है शरीर की। राक्षस की चिंता में दो जून खाना और रात की नींद भी हराम हो गई है। वो तो हमारा खून चूस-चूस कर मोटा होता जा रहा है। पाप के घड़े सा पेट फूलता ही जा रहा है, जाने कब फूटेगा यह घड़ा। क्या सोचा था क्या हो गया। कहां तो इस नासपीटे के चंगुल से बचने को यह सब किया था, कहां उलटा उसी के जाल में फंस गए। इससे तो कमली को ही दो साल और बैठा लेते। अचानक साहूकार का पान चुमलाता चेहरा सामने आ गया। मोटे-मोटे लाल होंठ, पान से रंगे काले दांत, सुमना के चेहरे पर झुकते जा रहे हैं। वह चीख कर उठ बैठी। सारा शरीर पसीने से तर हो गया। अपनी सोच में खोई-खोई वह जाने कब सो गई थी। उफ....तो वो सब सपना था। वह अभी भी कांप सी रही थी। तभी मुर्गे की बांग सुनाई दी। भोर हो गई थी। दोनों हाथ जोड़ कर सुमना बुदबुदा उठी, "हे देवी मइया रक्षा करो!"

हर आहट पर सुमना चौंक पड़ती थी। कल पूरे दिन छटपटाते रहने के बाद भी भीखू कहीं से कोई जुगाड़ न कर पाया था। आज सुबह मुंह अंधेरे ही वह निकल भागा था। कहीं से कुछ भी सौ-दो-सौ पकड़ कर कम से कम आज तो उसे टालूंगा। लेकिन अब सांझ ढलने को हो रही थी और अब तक भीखू का कहीं पता नहीं था। रामू को थपक-थपक कर उसने सुला दिया था। ज्यों-ज्यों सांझ ढलती थी, उसका मन अकुलाता जाता था—भगवान जाने क्या होगा। तभी द्वार पर भारी कदमों की आहट सुनाई पड़ी, साथ ही छड़ी की ठकठकाहट भी। सुमना का तन-बदन थर-थर कांपने लगा। और तभी यमदूत सा वह सुमना के सामने आ खड़ा हुआ। पान चुमलाते उसके मोटे-मोटे होंठों पर कुत्सित मुस्कराहट खेल रही थी। अपनी लाल-लाल आंखें उसके पल्लू ढलके वक्ष पर टिकाते हुए वह झुका और सुमना की बांह पकड़ता हुआ बोला, "कहो सुमना रानी....कहां छिपा बैठा है तुम्हारा वो इज्जतदार नवाब....अरे हम तो तुम्हारा मुंह देख कर चुप बैठ जाते हैं....लेकिन कहां तक सबर करें....अब देखो तुम तो समझदार हो....अरे हम कहते हैं तुम में ऐसा बिगड़ भी क्या जाएगा....जैसे भीखू वैसे हम...." धीरे-धीरे उसका हाथ बांह से फिसलता हुआ उसके कंधे पर आ गया था।

सुमना एकदम तड़प उठी। हाथ छुड़ाने की असफल कोशिश कर रही थी कि तभी किचकिचा कर साहूकार ने उसे दीवार के साथ दबोच लिया। सुमना अचेत सी हो गई थी। साहूकार की तेज-तेज सांसें उसके चेहरे को झुलसाए दे रही थीं। अचानक....एक तेज झटके के साथ वह दूर छिटक गया। सुमना ने भय से त्रस्त आंखें उठाई, हाथ में हसिया लिए भीखू भय से थर-थर कांपते साहूकार की तरफ दांत पीसता बढ़ा जा रहा था। सुमना चीख उठी, "खून....खून....बचाओ...."

भीखू अचानक चौंका और बस उस एक पल में ही साहूकार ने उसे दबोच लिया। इतनी देर में चीख-चिल्लाहट सुन कर पूरा गांव उलट पड़ा था। साहूकार अब शेर बन गया था, वह गला फाड़-फाड़ कर चीख रहा था, "साले....हरामी की औलाद....जब पैसे लेने थे तब तो पांव पकड़ कर गिड़गिड़ाते थे....अब मांगने पर खून करने को उतारू हो गए....अरे भाग तो जा कोई पुलिस-दारोगा को बुला के ले आओ....आज इस हूर परी की इज्जत और इस नवाब की ऐंठ निकालूंगा मैं....अरे खून करेगा तू मेरा....नारायण साहूकार का...."

पल भर में पुलिस-दारोगा दल-बल सहित आ पहुंचे। भीखू और सुमना अब तक सदमे से उबर नहीं पाए थे। दोनों को हथकड़ी डाल कर थाने ले जाया गया। पूरा गांव सब कुछ जानते-बूझते भी अनजान बना खड़ा था। एक-एक रोयां तो साहूकार के पास गिरवी था, कौन दुश्मनी मोल लेता।

थाने पर जाते ही भीखू को तो एक कोठरिया में धक्के देकर डाल दिया गया और सुमना को लेकर दारोगा जी उस कमरे में चले गए जहां साहूकार पानी-पत्ते का इंतजाम किए बैठा था। भीखू आंख फाड़े उसे दारोगा के साथ जाते और कोठरिया का दरवाजा बंद होते देखता रहा। वह एकदम अकुला उठा। पास खड़े सिपाही से उसने हाथ जोड़ कर पूछा, "हुजूर! उसे थाने क्यों ले आए? दारोगा जी उसे कहां ले गए हैं।"

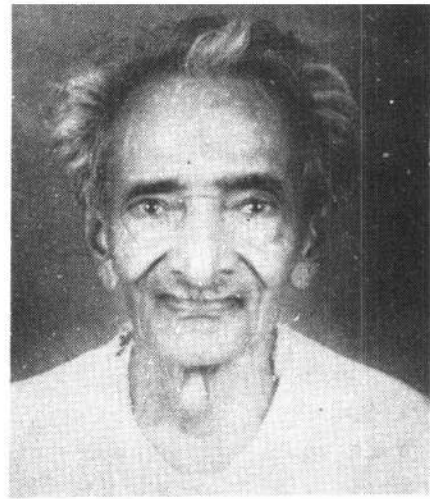
सिपाही बड़ी-बड़ी मूंछों के नीचे व्यंग्य से मुस्कराया, "अबे घबराता क्यों है। बस रात में थोड़ी 'पूछताछ' करके छोड़ देंगे।"

"लेकिन हुजूर उस औरत-जात से क्या पूछताछ करेंगे। हम से पूछें, हम बताते हैं हमारा अपराध क्या है। हम गरीब लोग अपनी इज्जत बचाना चाहते थे इसी से...." उसकी बात अधूरी ही रह गई। सिपाही ने एक जोरदार ठोकर उसके मुंह में मारी। वह जमीन पर लोट गया। "साला भाषण छांटता है। उधार लेकर खाते तेरी इज्जत नहीं गई। अब साला इज्जत वाला बना है....हरिजन-गरीब भी इज्जत वाले हो गए....ले साले बचा इज्जत....ले....और ले...."

कोठरी के फर्श पर सिपाही के बूटों की ठोकर पर उछलती गेंद सा भीखू अचेत सा हो रहा था। कानों में सुमना के चीखने और दारोगा व साहूकार के मिले-जुले अट्टहासों की आवाज आ रही थी। वह तड़प कर उछला और दरवाजे की तरफ झपटना ही चाहता था कि सिर पर एक जोरदार ठोकर लगी। अर्धसुप्त मस्तिष्क में उस 'विशेष पूछताछ' की आवाज आ रही थी। आज सारा करजा चुकाया जा रहा था। साहूकार का कर्जा.... □

प्रखर आलोचक श्री कृष्णानन्द गुप्त

जगदीश प्रसाद चतुर्वेदी



जिस समय हिन्दी साहित्य गगन में श्री जयशंकर प्रसाद के नाटक अपनी धूम मचा रहे थे और प्रसाद जी उगते हुए छायावाद के एक कवि ही नहीं बल्कि एक प्रसिद्ध नाटककार की भूमिका निभा रहे थे, उनके नाटकों की एक कड़ी आलोचना गंगा पुस्तकमाला, लखनऊ से प्रकाशित हुई। यह बात 1929 की है। पुस्तक का नाम था—'प्रसाद जी के दो नाटक।' इस पुस्तक में उनके स्कंदगुप्त और चन्द्रगुप्त नाटकों की बड़ी बेबाक समीक्षा की गई थी। यह समीक्षा शिल्प की दृष्टि से, अभिव्यक्ति की दृष्टि से और भाषा की दृष्टि से की गई थी और संसार के प्रसिद्ध नाटककारों की रचनाओं को ध्यान में रखकर प्रसादजी के नाटकों का मूल्यांकन किया गया था। लेखक के अनुसार संसार में नाटक लेखन ने जिस ऊँचाई को प्राप्त कर लिया था उसे प्रसादजी के नाटक प्राप्त नहीं कर सके।

इस पुस्तक के लेखक थे श्री कृष्णानन्द गुप्त। वैसे आलोचना के क्षेत्र में उनका यह पहला प्रवेश था। वर्ष 1927 में उनका पहला कहानी संग्रह छपा था और 1929 में साहित्य सदन, चिरगांव से गोर्की के लघु उपन्यास 'शेलकरा' का अनुवाद छपा था। परन्तु उससे भी अधिक प्रशंसनीय उनका अपना उपन्यास 'केन' था, जिसमें बन्देलखण्ड में बहने वाली केन नदी का प्रारंभ एक प्रेमकथा के रूप में चित्रित किया गया था। यह उपन्यास इतना मनोहारी था कि बन्देलखण्ड अंचल प्रधान होते हुए भी वह जिसने पढ़ा, उसी को अच्छा लगा।

उस समय श्री कृष्णानन्द गुप्त चिरगांव में थे, जो श्री मैथिलीशरण गुप्त और श्री सियारामशरण गुप्त के कारण प्रसिद्ध हो गया था। यदि श्री कृष्णानन्द गुप्त कहानी और उपन्यास ही लिखते रहते तो देश के श्रेष्ठ कथाकारों में उनका स्थान होता। परन्तु उनकी आलोचना विवादास्पद हो गई और काशी तथा प्रयाग के साहित्यिक केन्द्रों में हलचल मच गई। चूँकि उस समय वे चिरगांव में थे और उनके नाम के आगे भी गुप्त लिखा जाता था, इसलिए अनेक ने उन्हें गुप्त बन्धुओं में से एक ही समझा और कुछ ने यह भी शंका की कि शायद प्रसादजी की कीर्ति कम करने के लिए यह आलोचना लिखी गई है। श्री कृष्णानन्द गुप्त इतने क्षुब्ध हुए कि उसके बाद वर्षों तक उनकी कोई पुस्तक ही नहीं लिखी गई। उनका अगला कहानी संग्रह 'पुरस्कार' 1940 में 'सरस्वती प्रकाशन मंदिर', इलाहाबाद से निकला, जिसके लिए अगले वर्ष उन्होंने विज्ञान पर दो पुस्तकें लिखी—'पदार्थ परिचय' और 'जीव की कहानी'। साथ ही साथ 1941 में उन्होंने नागरिक शास्त्र पर भी एक पुस्तक लिखी, जो इलाहाबाद से ही प्रकाशित हुई।

श्री कृष्णानन्द गुप्त के सम्बन्ध में वर्ष 1982 में श्री बनारसीदास चतुर्वेदी ने 'नवभारत टाइम्स', दिल्ली में एक लेख लिखा था, जिसमें उन्होंने पचास वर्ष पूर्व श्री कृष्णानन्द गुप्त के 'विशाल भारत' के लिए प्राप्त एक लेख के छापने के एक प्रसंग के बाद लिखा था—'एक बात मैंने तब भी समझ ली थी वह यह कि श्री कृष्णानन्द जी जो कुछ भी पढ़ते हैं, उसे ध्यानपूर्वक पढ़ते हैं, उसका मनन करते हैं और निष्पक्षतापूर्वक उस पर अपनी सम्मति भी कायम करते हैं।' उन्होंने आगे लिखा था—'बहुत से लोगों को इस बात का पता न होगा कि हिन्दी-जगत में गोर्की की एक कहानी का अनुवाद करने वालों में श्री कृष्णानन्दजी का स्थान शायद सर्वप्रथम था। यही नहीं, प्रिंस क्रापाटकिन के क्रांतिकारी निबन्धों को उन्होंने तब पढ़ा था जब हिन्दी जगत में बहुत कम लोगों ने उनका नाम सुना था। मेरा अनुमान है श्री कृष्णानन्दजी ने सहस्रों ही रुपये पुस्तकों को खरीदने में खर्च कर दिए होंगे। किसी पुस्तक-विक्रेता की दुकान पर जाना उनके लिए खतरनाक है। संसार के सर्वश्रेष्ठ ग्रंथकारों की रचनाओं को पढ़ने के कारण उनकी समीक्षक शक्ति बहुत तीव्र हो गई है। तोलने की तराजू बावन तोले पाव रत्ती ठीक। और भाषा अथवा भाव की कोई भी त्रुटि उनकी आंख से बच नहीं पाती। श्री कृष्णानन्दजी किसी की खुशामद करना नहीं जानते, वे किसी को भी नहीं बख्शते। सबसे अधिक निराशा उन्हें तब होती है जबकि कोई उथले ज्ञानवाला शोधकर्ता दंभपूर्वक उनके सामने अपने ज्ञान (या अज्ञान?) का प्रदर्शन करता है।'

ऐसे श्री कृष्णानन्दजी का गत 27 अक्तूबर को अपने ग्राम गरोठा में देहांत हो गया। इसकी सूचना उनके पुत्र के पत्र से प्राप्त हुई, किसी समाचार पत्र में समाचार नहीं देखा। हो सकता है झांसी और उरई के किसी समाचार पत्र में समाचार छपा हो। वर्षों से वे उरई में रह रहे थे।

मुझे गुप्तजी के दर्शन जून, 1941 में कुण्डेश्वर में हुए। उस समय टीकमगढ़ के पास स्थित कुण्डेश्वर से 'मधुकर' का प्रकाशन प्रारंभ हो गया था। उसके सम्पादक श्री बनारसीदास चतुर्वेदी ने अनेक लेखकों को कुछ दिन साथ रहने के लिए बुलाया था और उस आयोजन का नाम दिया था 'स्वाध्याय मण्डल'। उसमें सम्मिलित होने के लिए दिल्ली से श्री जैनेन्द्र गए थे, मैं उन

दिनों मथुरों में था और मुझे निमंत्रण मिला तो मैं भी पहुंच गया। गरोठा से श्री कृष्णानन्द गुप्त आए थे और महात्मा भगवान दीन, श्री वृन्दावनलाल वर्मा, श्री हरगोविन्द गुप्त, श्री रामसेवक रावत जैसे बुन्देलखण्ड के अनेक साहित्यिक कार्यकर्ता सम्मिलित हुए थे। उन दिनों प्रातःकाल सभी साथ घूमने जाते, जमदार नदी के बांध पर बने झुण्ड में साथ-साथ स्नान करते और तैरते और सायंकाल किसी विषय पर चर्चा होती। एक दिन इस विषय पर चर्चा हुई कि राष्ट्रभाषा हिन्दी का स्वरूप क्या हो। उस समय श्री कृष्णानन्द गुप्त ने अन्य लोगों की राय से हटकर बड़ी स्पष्टतापूर्वक यह मत प्रकट किया कि साहित्यिक हिन्दी का रूप बोलचाल की भाषा से हटकर होगा। उसमें संस्कृत के शब्द अधिक होंगे क्योंकि अनेक गूढ़ विषयों को प्रतिपादित करने के लिए साधारण बोलचाल के शब्दों से काम नहीं निकलेगा। इसी तरह लेखकों तथा प्रकाशकों के बीच में क्या सम्बन्ध हो, इस पर भी उन्होंने अपने विचार बड़े बेबाकी से रखे थे। मैं उनकी स्पष्टवादिता से तो प्रभावित हुआ ही, वे जितनी शुद्ध हिन्दी बोलते थे जिसे सलीस हिन्दी कहा जा सकता है। वैसे बोलने वाले हमने कम देखे थे। हम सबकी भाषा में चाहे जहां हम रहे या जहां हम पैदा हुए उसका कुछ असर उच्चारण, ध्वनि या वर्तनी के रूप में देखा जा सकता है। परन्तु श्री गुप्त की हिन्दी मानक हिन्दी थी, जिसमें कोई दोष नहीं पाया जा सकता। मजे की बात यह कि उन्होंने अंग्रेजी साहित्य की हजारों पुस्तकें पढ़ीं परन्तु जब वे बोलते या लिखते थे तो अंग्रेजी का प्रभाव या झलक दिखाई नहीं देती थी।

हिन्दी के उस युग के वे बहुपठित लेखक थे। उनका जन्म 3 फरवरी, 1903 को ललितपुर में जो उत्तर प्रदेश का सबसे दक्षिणी जिला है, हुआ था। उनके पिता श्री स्वामी प्रसाद झांसी जिले के गरोठा ग्राम के निवासी थे, लेकिन वे गिरदावर कानूनगो थे और उनका तबादला होता रहता था। श्री कृष्णानन्द गुप्त की प्रारंभिक शिक्षा ललितपुर में ही हुई थी, जिसके बारे में यह कहावत है, ललितपुर न छोड़ियों जब लौं मिले उधार। ललितपुर में साहूकारों की बस्ती थी—नदी तट पर बसा कस्बा था और अब भी है और वहां के लोग एक-दूसरे का ख्याल रखते थे। जब उनके पिताजी का तबादला मौठ हो गया तो 1913 में वे उनके साथ मौठ चले गए और वहां से 1916 में हिन्दी मिडिल किया। इसके उपरान्त उन्हें शिक्षा के लिए झांसी के मैकडोनल हाई स्कूल में भेजा गया, जहां से उन्होंने मैट्रिकुलेशन परीक्षा पास की और फिर वहां से राजकीय कालेज में इंटरमीडिएट की शिक्षा प्राप्त की।

श्री कृष्णानन्द गुप्त को लेखन का शौक शिक्षाकाल में ही हो गया था और 1916 में इलाहाबाद से प्रकाशित विद्यार्थी पत्र में उनकी पहली रचना 'शिवाजी की गुरु भक्ति' प्रकाशित हुई, तब वे छठी कक्षा के छात्र थे और जब वे हाई स्कूल की परीक्षा देने वाले थे तब उनकी पहली कहानी—'भौतिकता' कानपुर से प्रकाशित मासिक पत्रिका 'प्रभा' में 1922 में छपी थी। तभी से वे श्री गणेशशंकर विद्यार्थी के सम्पर्क में आए और जब विद्यार्थीजी चिरगांव आया करते थे तो उनके साथ और भी निकट का सम्बन्ध हो गया। विद्यार्थी जीवन में ही गुप्त जी ने बंगला सीखी थी और 1918 में हिन्दी साहित्य सम्मेलन की विशारद परीक्षा

उत्तीर्ण कर ली थी। वे 'सरस्वती' के पाठक भी थे और श्री महावीर प्रसाद द्विवेदी के सम्पर्क में भी आए। मौठ से ही उनका सम्पर्क श्री मैथिलीशरण गुप्त से हुआ और बाद में एक प्रकाशन कम्पनी की स्थापना के सिलसिले में वे चिरगांव आ गए थे। बहुत थोड़े लोग जानते थे कि संसार के श्रेष्ठ साहित्य से श्री मैथिलीशरण गुप्त और श्री सियारामशरण गुप्त को परिचित कराने का काम श्री कृष्णानन्द गुप्त ने ही किया।

कुण्डेश्वर के प्रवास में कृष्णानन्द जी से भेंट हुई थी लेकिन उनके साथ प्रतिदिन रहने का संयोग जनवरी 1943 में मिला, जब श्री बनारसीदास चतुर्वेदी ने बुन्देलखण्डी विश्वकोश योजना के लिए श्री कृष्णानन्द गुप्त को सम्पादक बनाकर कुण्डेश्वर बुला लिया था और मुझे उनके सहायक के रूप में विश्वकोश का काम करने के लिए दिल्ली से बुलाया था। मैं उन दिनों 'नेशनल काल' में काम कर रहा था और शीघ्र ही पुनः प्रकाशित होने वाले 'दैनिक हिन्दुस्तान' में काम के लिए आवेदन दे रखा था। इसी बीच छह महीने के लिए श्री बनारसीदास चतुर्वेदी का बुलावा आ गया और मैंने यह सोचकर कि इस बहाने कुण्डेश्वर के साहित्यिक केन्द्र में कुछ अनुभव प्राप्त होगा, कुण्डेश्वर के लिए रवाना हो गया। बुन्देलखण्डी विश्वकोश का काम श्री कृष्णानन्द जी को शायद ज्यादा पसन्द नहीं आया और उन्होंने कुछ दिनों बाद कुण्डेश्वर छोड़कर टीकमगढ़ नगर में ही 'लोकवार्ता परिषद' की स्थापना की और लोकवार्ता नामक प्रसिद्ध पत्रिका प्रकाशित की। महाराजा ओरछा ने उन्हें पूरा सहयोग दिया और वही स्वाधीनता दी, जो श्री बनारसीदास चतुर्वेदी को तथा हम लोगों को साहित्य सेवा के कार्य में दे रखी थी। पहले तो श्री गुप्त ने एक अंग्रेजी-हिन्दी कोश का कार्य शुरू किया था, जिसमें उनके गहन अध्ययन का लाभ मिलता परन्तु बाद में वे 'लोकवार्ता' की ओर मुड़ गए। फिर भी उन्होंने 1960 में उत्तर प्रदेश सरकार के सूचना विभाग के लिए बुन्देली कहावत कोश तैयार किया और 1966 में नेशनल बुक ट्रस्ट के लिए 'हिन्दुस्तानी कहावत कोश'। उन्होंने बुन्देली भाषा का एक शब्दकोश भी तैयार किया जो दुर्भाग्यवश प्रकाशित नहीं हो सका। लेकिन 'ईसुरी' की फागों का सम्पादन और प्रकाशन किया और उस महान कवि को पहली बार उसके सही परिप्रेक्ष्य में प्रकट किया। 'लोकवार्ता' पत्रिका वर्ष 45 और 46 में दो वर्ष तक प्रकाशित हुई। यह त्रैमासिक पत्रिका थी। इस पत्रिका के बारे में डा. गौरीशंकर हीराचन्द ओझा ने कहा था—“इस पत्रिका से हिन्दी साहित्य के एक ऐसे अंग की पूर्ति होगी, जिस पर बहुत कम ध्यान दिया गया है।” डाक्टर सुनीत कुमार चटर्जी का मत था—“लोकवार्ता भारतीय भाषाओं में प्रकाशित पत्र-पत्रिकाओं में अनोखी और निराली है।”

श्री कृष्णानन्द गुप्त जिस समय पढ़ रहे थे तो श्री गणेशशंकर विद्यार्थी ने उनसे एक प्रश्न किया था कि पढ़कर क्या करोगे, इसके उत्तर में उन्होंने कहा था—नौकरी करूंगा। तब गणेशजी ने उनसे कहा था कि अंग्रेज सरकार की नौकरी न करना और फिर कृष्णानन्द जी ने सरकारी नौकरी की ओर मुंह भी नहीं किया। उनका व्यक्तित्व ही ऐसा था कि वे किसी से दब नहीं सकते थे, न जाने किस प्रसंग से उनके नाम के आगे गुप्त लग गया। तेज में वे किसी छात्र या ब्रह्म तेज से कम नहीं थे। उन्हें स्वाधीनता के बाद

भारत सरकार के सूचना मंत्रालय में जब सरदार पटेल सूचना तथा प्रसारण मंत्री भी थे, एक नौकरी मिली थी जो प्रसिद्ध कला मर्मज्ञ और आई. सी. एस. श्री एन. सी. मेहता ने उन्हें प्रदान की थी, पर उन्होंने दूसरे ही दिन त्यागपत्र दे दिया। विंध्य प्रदेश के वे सूचना निदेशक भी बनाए गए, परन्तु वहां भी बहुत दिन नहीं रह सके। इलाहाबाद के संगम पत्र का भी कुछ दिन सम्पादन किया। उनके बारे में बनारसीदास जी ने यह भी लिखा था—“कृष्णानन्द जी में एक गुण है जो दुर्गुण की सीमा तक पहुंच गया है। सर्वोत्तम लिखने की धुन में वे कोई अच्छी चीज भी नहीं लिख पाते।” यही कारण है कि कृष्णानन्द गुप्त इतने लम्बे साहित्यिक जीवन में बहुत कम पुस्तकें लिख पाए। उन्होंने 4 फरवरी, 1989 को मुझे लिखा था—“चौबे जी की बड़ी अभिलाषा थी कि मैं अपने संगम के अनुभव लिखूं। जब तक रहे बराबर उसके लिए प्रेरित करते रहे। वह उनका ही ऋण होगा जिसे चुकाना चाहता हूं। वह पत्रकारिता पर तो नहीं, पर एक पत्रकार के रूप में मेरी विफलता की कहानी होगी।

ले-देकर पुराने मित्रों के समुदाय में आप ही एक ऐसे व्यक्ति हैं जो इस तरह के मामले में मेरी सहायता कर सकते हैं और उचित परामर्श भी दे सकते हैं। सो दीजिएगा। लिख जाने पर भेजूंगा। एक छोटी-सी पुस्तक लिखने पर करीब 150 पृष्ठ।”

लेकिन उनकी यह पुस्तक भी नहीं छप सकी। इससे पूर्व वे कई बार दिल्ली आए और प्रकाशकों के साथ बातचीत की परन्तु कुछ बात बनी नहीं। एक बार उन्होंने मुझे लिखा था—“अभी-अभी प्रातःकाल एक विचार मन में उठा। यदि आप हिम्मत करें और आपका थोड़ा भी सक्रिय सहयोग मिले तो एक खतरा मोल लेना चाहता हूं यानी दिल्ली को केन्द्र बनाकर स्वयं ही कुछ प्रकाशन किया जाए। मेरी यह एक शेखचिल्ली जैसी बात है। किन्तु दृढ़ इच्छा शक्ति और लगन से काम लेने पर ऐसा कोई कार्य नहीं जिसमें सफलता प्राप्त न की जा सके।”

मैं इस स्थिति में नहीं था कि पत्रकारिता छोड़ प्रकाशन कार्य में लगूं। मेरे पुत्र ने एक पत्रनिकाला था जिसमें बेहद घाटा हुआ और आगे किसी व्यापार में पड़ने की या किसी दूसरे साहित्यकार को उसमें पड़ने देने की सलाह मैं नहीं दे पाया, पर इसकी नौबत भी नहीं आई। उन्हें किसी प्रकाशक का पत्र मिला और चिट्ठी-पत्री शुरू हुई, वे दिल्ली आ भी नहीं सके और वह बात समाप्त हो गई।

श्री कृष्णानन्द गुप्त जहां एक ओर कठोर आलोचक थे, वहां अपने लिए भी उतने ही कड़े थे। उनसे मैथिलीशरण गुप्त के बारे में लिखने को मैंने कहा था, उसका उत्तर उन्होंने इस प्रकार दिया था—“मैं तो मैथिलीशरण जी पर आज तक कुछ नहीं लिख सका। जब भी लिखने को कलम उठाई तभी दूसरे क्षण उसे एक ओर रख भी दिया। पात्र जितना अधिक विख्यात एवं प्रतिष्ठा प्राप्त हो और आप उसके जितना निकट रहे हों, विभिन्न स्थितियों और मूड्स में आपने उसे जितना अधिक देखा हो, उसके सम्बन्ध में कुछ भी लिखना उतना ही कठिन रहता है और खतरनाक भी। आप मानेंगे।”

उनका 5 मई, 1987 का पत्र मेरे लिए एक प्रमाण-पत्र है और उसमें उन्होंने श्री मैथिलीशरण गुप्त के लिए भी अपनी श्रद्धांजलि बड़े कारुणिक शब्दों में प्रकट की थी। उन्होंने लिखा था—“दददा की मृत्यु का दारुण समाचार चिरगांव के ही एक सज्जन ने सुनाया था। वे उन दिनों वहां के (गरोठा के) राजकीय चिकित्सालय में मुख्य चिकित्सक के रूप में काम कर रहे थे। मैं बीमार पड़ा था। वे नित्य ही मुझे देखने आते थे। नित्य प्रति की तरह उस दिन भी आए और मेरी नब्ज एवं वक्षस्थल की परीक्षा करने के बाद स्टेथेस्कोप को हाथ में थामे धीरे से स्थलित स्वर में उन्होंने कहा था—‘दददा नहीं रहे।’ मैं उठकर बैठ गया था। ‘दददा नहीं रहे।’

उसी दिन मैंने पं. बनारसीदास जी को लिखा था—‘दददा नहीं रहे। खड़ी बोली के काव्य की एक दीर्घकालीन परम्परा पर सदैव के लिए पटाक्षेप हो गया।’ लौटती डाक से चौबे जी का पत्र मिला था। आधा अंग्रेजी में, आधा हिन्दी में, जैसी उनकी पत्र लिखने की आदत थी।

‘बहुत खूबियां थीं मरने वालों में।’ फिर मेरे लिए लिखा था—‘आप दददा के बारे में जरूर लिखें।’ मैंने उत्तर दिया था—‘हां अवश्य लिखूंगा।’

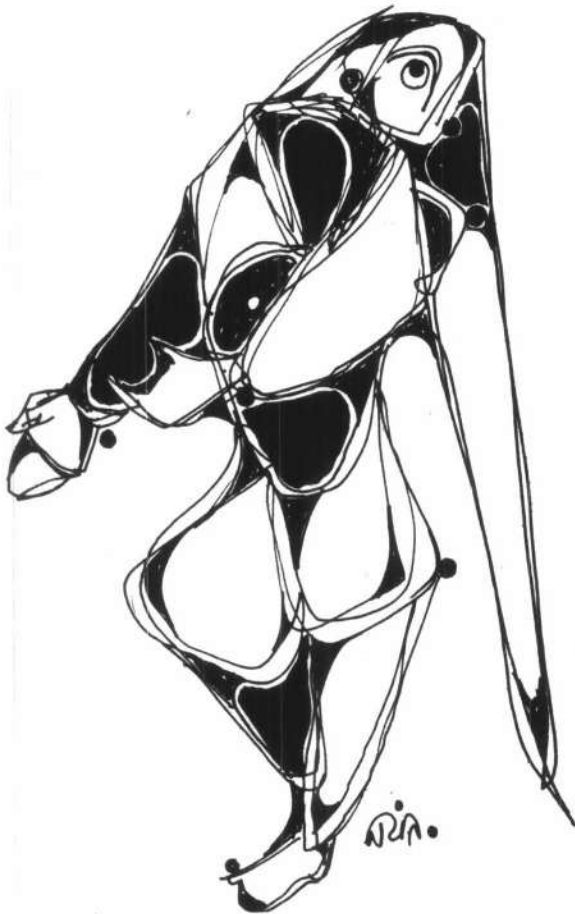
विधि की विडम्बना देखिए आज तक दददा के सम्बन्ध में कुछ भी नहीं लिख सका।

शुरू में ही उन्होंने लिखा था—“कल दोपहर को आपकी पुस्तक ‘मैथिलीशरण गुप्त की काव्य यात्रा’ मिली। धन्यवाद। दददा की काव्य यात्रा के सम्बन्ध में इतनी बढ़िया, रोचक, तथ्यपूर्ण और अधिकांश में नवीन सामग्री से भरी पुस्तक लिखने के लिए आपको हार्दिक बधाई देता हूं। आंखों में मोतियाबिन्द भी उतर रहा है। इन कारणों से न तो जल्दी कुछ लिख ही पाता हूं और न पढ़ ही। फिर भी आपकी इस रचना ने मुझे इतना आकर्षित किया कि चार-पांच घंटे में लगातार बैठे उसे करीब-करीब पूरा पढ़ डाला। अन्त के पृष्ठ पढ़ते-पढ़ते मेरी आंखें डबडबा आईं। डा. मोतीचन्द्र जी के संस्मरण तो अत्यन्त मार्मिक हैं।”

ऐसे थे श्री कृष्णानन्द गुप्त। खेद यह है कि हिन्दी साहित्यकारों की हारी-बीमारी की कोई खबर लेने वाला नहीं। श्री हरगोविन्द गुप्त का पत्र आया कि 27-10-90 को गरोठा में श्री कृष्णानन्द जी गुप्त का 87 वर्ष की आयु में निधन हो गया। वे यह मनस्ताप ही लेकर गए कि उनकी ओर किसी ने विशेष ध्यान नहीं दिया। प्रभु की इच्छा। बात सही है परन्तु आज का युग उस युग से बहुत भिन्न है जब श्री महावीर प्रसाद द्विवेदी, श्री गणेशशंकर विद्यार्थी या श्री बनारसीदास चतुर्वेदी साहित्यकारों का ध्यान रखते थे। जब वे संघर्ष कर रहे होते थे तब भी और जब वे संसार त्याग जाते तब भी। अब पत्रों के पास जगह नहीं है, पाठकों के पास समय नहीं और लेखकों को ऐसा काम रास आता है जो तत्काल फलदायी हो। मरा व्यक्ति किसी को क्या फल दे सकता है, फिर कोई उसे क्यों पूछे। □

रेशमी साड़ी

यर्रमिल्लि विजयलक्ष्मी



बेचने के बाद उस के हाथ में जो साड़ी बची उसे देखकर यादम्मा मन ही मन ललचाई। 'इस जनम में मैं ऐसी साड़ी पहन सकती हूं!' मन ही मन फुसफुसाई।

उस नए व्यक्ति को वहां आकर दस मिनट हुए, वह जिप बैग भर साड़ियां लाया था।

इधर-उधर की औरतें वहां आ धमकीं। बेचने वाले को घेर लिया और सारी साड़ियां खरीद ले गईं। यादम्मा विस्फारित नेत्रों से देखती रह गई।

बेचने वाले ने यादम्मा की ओर ऐसे देखा मानों उस का मन ताड़ गया हो। वह यादम्मा के निकट आया और फुसफुसाया, 'क्यों बुलबुल! साड़ी चाहिए क्या?'

साड़ी पर यादम्मा के मन में जो लालसा थी, वह उसकी आंखों में झिलमिलाने लगी। हिचकिचाते हुए उसने कहा—'सा.....ड़ी.....?.....मैं.....?'

'झपट कर खरीद ले गई हैं। यह एक ही बच गई है। बोलो न.....! चाहिए कि नहीं.....?' उसने फिर पूछा।

साड़ी का रंग मोर कंठ-सा है। सोने के फूलों का चौड़ा किनारा सुन्दर है। हाथ में टिकती नहीं, फिसलती जा रही है। यादम्मा ने मन ही मन सोचा कि दाम ज्यादा रहेगा.....! न चाहती हुई भी आगे बढ़ी और उंगलियों से साड़ी को छू कर देखा। उसकी चिकनाहट से अन्तस्तल में गुदगुदी सी हुई।

'केत्ता....(कितना).....?' यादम्मा फुसफुसाई। फिर सोचने लगी, 'मैं दाम क्यों पूछ रही हूं.....? मैं खरीद सकती हूं क्या.....?'

'ज्यादा तो नहीं, सिर्फ सौ रुपये!' सौदागर ने कहा।

'बाप रे.....सौ.....?' यादम्मा मुंह बाए खड़ी रह गई।

'थोक में सस्ती मिली है.....नहीं तो पांच सौ में भी नहीं मिलती।' उसने मुस्कराते हुए कहा।

'सच है.....साड़ी देखते ही लगता है कि महंगी है.....! यादम्मा ने कहा। तब तक उसकी आंखों में आशा की जो चमक थी वह गायब हो गई और उसकी जगह निराशा की रेखा उभर आई।

'नै चाइए....।' कह कर वहां से खिसक जाना चाहा।

सौदागर ने जाने न दिया।

'संकोच न करो.....कहो कि कितना दे सकती हो.....यह साड़ी तुम्हें अच्छी फबती है। पचास दो.....बस.....।'

'पचास.....! मेरे पास कौं अय.....?' लालसा को जबरन रोकते हुए कहा।

'खैर.....जितना दे सकती हो, दो.....बेचारी, ललचा रही हो!'

'मैं जो कुछ भी दूं.....उसी में देते अय क्या.....?'

यादम्मा के मन में शंका हुई कि सौदागर की बात सच है या झूठ। वह साड़ी की ओर से नजर नहीं फेर सकी।

'मांग कर देखो न.....साड़ी की बात क्या है.....! तुम जैसी लड़की मांगे तो साड़ी ही नहीं जो भी चाहो दिया जा सकता है।' उसने मजाक करते हुए कहा।

सौदागर की बात सुन कर यादम्मा नाराज हो गई और टुकुर-टुकुर देखने लगी।

'तुम्हारे जैसी लड़की से सौदा करना मुझे नहीं सुहाता.....पच्चीस दे कर ले जाओ.....!'

यादम्मा चौंक पड़ी कि इतनी महंगी साड़ी पच्चीस.....? मन उछल पड़ा। उसके पास नहीं हैं.....! अगर पैसे होते तो मुंह मांगा दाम देकर खरीद लेती.....कित्ती अच्छी अय.....अपने पास पच्चीस

भी नै....छि....छि....कैसी जिनदगी अय यह.....! यादम्मा निराशा से लौट पड़ी।

'तेरे पास कितना है....?'

'बारा अय....! यादम्मा ने लजाते हुए कहा।

'खैर....दस देकर साड़ी ले जाओ!' साड़ी कागज में लपेट कर यादम्मा के हाथ में थमा दी। यादम्मा आंखें फाड़कर देखती रह गई कि वह सपना देख रही है या वास्तव.....!

'जल्दी दो....मुझे जाना है!' सौदागर उतावला होने लगा। यादम्मा ने गठबंधन को दांतों से खोला और दस रुपये का नोट उसे दिया। दूसरे क्षण सौदागर गायब हो गया। यादम्मा चकित हो



उसी ओर देखती रह गई, जिस ओर वह चला गया। उसके हाथ में कागज की जो पुड़िया है, उससे मालूम हो रहा है कि जो हुआ वह सपना नहीं वास्तव है।

पुड़िया बगल में दबा कर यादम्मा दौड़ती हुई झोपड़ी में घुस गई। पुड़िया खोल दी और साड़ी की तहें खोल कर छू-छू कर देखने लगी। आंचल यों ही कंधे पर डाल कर आइने के टुकड़े में देखती हुई फूली न समाई!

'क्या विशेषता है यादम्मा? दुल्हन बन कर आई है!' मेस्त्री ने मुस्कुराते हुए पूछा। मेस्त्री ही नहीं, जिस किसी ने उसे देखा वही प्रश्न पूछा। लंबी चोटी बुन कर, उसमें गेंदे का फूल लगा कर दस रुपये में खरीदी रेशमी साड़ी विशेष रूप से पहन कर, स्पेशल गेटअप में झाड़ू और टोकरी ले कर यादम्मा काम में लग गई है। आंचल कमर में ऐसा बांध लिया ताकि झिलमिलाते किनारा स्पष्ट दिख पड़े। झाड़ू का लंबा डंडा पकड़ कर सबेरे ही सड़कें साफ करने का काम शुरू किया। सड़क पर आने-जाने वाले सब लोग उसी की ओर देख रहे हैं। सब की आंखें उसी पर लगी हुई हैं।

'यह साड़ी तेरे बदन पर अच्छी फब गई है। लक्ष्मी देवी सी लग रही हो। रेशमी साड़ी-सी है। कितने में खरीद ली?' यादम्मा की कोलीग पापम्मा ने पूछा। यादम्मा निरी भोली-भाली है। झूठ बोलना वह नहीं जानती। सच बात बता दी।

'तेरा तकदीर अच्छा है। नहीं तो यह रेशमी साड़ी इतनी सस्ती कैसे मिलती? अब मत पहनो....पेटी में छिपा रखो....शादी के

दिन पहनी जा सकती है।' पापम्मा ने सलाह दी। यादम्मा गर्व से मुस्कुराई और सड़क साफ करने में लग गई। सूरज आसमान पर चढ़ आया है। धूप की रोशनी में यादम्मा की रेशमी साड़ी और चमक रही है। कूड़ा-करकट साफ करके सड़क के किनारे ढेर लगा रही है यादम्मा। पापम्मा टोकरी में भर कर नगरपालिका के ट्रैक्टर में डाल रही है।

अचानक यादम्मा की पीठ पर लाठी की मार पड़ी तो 'हाय....माई-बाप....' कह कर चिल्लाई। मुड़ कर देखा तो लाठी हिलाते हुए खड़ी पुलिस दिखाई पड़ी। यादम्मा ने इसके पहले कभी इतने निकट से पुलिस को नहीं देखा था। पुलिस को देख कर थर-थर कांपने लगी।

'कहां से लाई बे यह साड़ी....?' कान्स्टेबल ने गरज कर पूछा। पसीने से लथपथ यादम्मा, 'खरीद ली बाबू....!' कहती हुई गिड़गिड़ाई।

'खरीद ली क्या....? वाह-वाह! रेशमी साड़ी खरीद ली क्या तू...? चल-चल....' कहती हुई पुलिस हंस पड़ी। सिपाही बात-बात में लाठी से मार रहा है। यादम्मा को बोलने नहीं दे रहा है।

लाठी की मार जब शरीर पर पड़ती है वह चिल्लाती और कहती है, 'सच है बाबू....! एक आदमी ने दस रुपये में दी है बाबू....मैंने खरीद ली बाबू....!' सिपाही उसे घसीट कर स्टेशन ले गया।

'कहां खरीदी....? किस से खरीदी....?'

यादम्मा दाम तो बता रही है। मगर यह नहीं कह पा रही कि किस से खरीदी! पुलिस का संदेह है कि यादम्मा जान-बूझकर सौदागर का नाम नहीं बता रही है। हाल ही में नगर में जो दंगा हुआ उस समय दुकानों को लूट लिया गया। जो चीज मिली, लेकर भाग गए लोग। हलचल थम गई तो दोषियों, चोरों और गुण्डों को पकड़ कर चोरी का माल बरामद करने का काम प्रारंभ किया है सरकार ने। कुओं और तालाबों में छिपाई गई चीजों को बाहर निकाल रहे हैं कर्मचारी। मालूम हुआ कि यादम्मा ने जो साड़ी पहनी है वह एक शोरूम की है। सच्चाई जानने के लिए यादम्मा को खूब सताया गया। गालियां दीं और लाठी से मारा। खान-पीना न देकर दो दिन लाकअप में बंद करके कुचल डाला। आखिर साड़ी छीन कर यादम्मा को बाहर ढकेल दिया। फटे-पुराने लहंगा और चोली-से वह झोपड़ी में आ पड़ी। झोपड़ी के एक कोने में दबक कर सिसकने लगी। उसे इस बात का दुःख नहीं है कि पुलिस ने सताया और साड़ी छीन ली। इस बात का दुःख है कि उसकी सच्चाई पर संदेह कर रहे हैं और उसे चोर बनाया गया है। यद्यपि वह गरीब है फिर भी कभी झूठ नहीं बोली और चोरी नहीं की। □

लेखिका
यर्रिमिल्लि विजय लक्ष्मी
बन्दावारि बिल्डिंग,
चीराला-523155
आंध्र प्रदेश

अनुवाद
वाई. सी. पी. वेंकटरैडुडी
यर्रावक्कापल्ली,
बाया : पटनम्-515501
जिला-अनंतपुर, आंध्र प्रदेश

प्राचीन गौरवस्थली कांपिल्य

डा. योगेन्द्र नाथ चतुर्वेदी

उत्तर प्रदेश का पश्चिमी अंचल प्राचीन भारतीय संस्कृति के प्रारम्भिक विकास का क्षेत्र रहा है। आर्यों ने अपने विस्तार के युग में जिन महत्वपूर्ण स्थानों को अपना केन्द्र बनाया था उनमें हस्तिनापुर के अतिरिक्त कांपिल्य, अहिच्छत्रा एवं मथुरा प्रमुख थे।

सुप्रसिद्ध इतिहासविद प्रो. कृष्णदत्त वाजपेयी के अनुसार भारतीय इतिहास के निर्माण में इन नगरों का योगदान विभिन्न दृष्टियों से उल्लेख्य एवं महत्वपूर्ण रहा है।

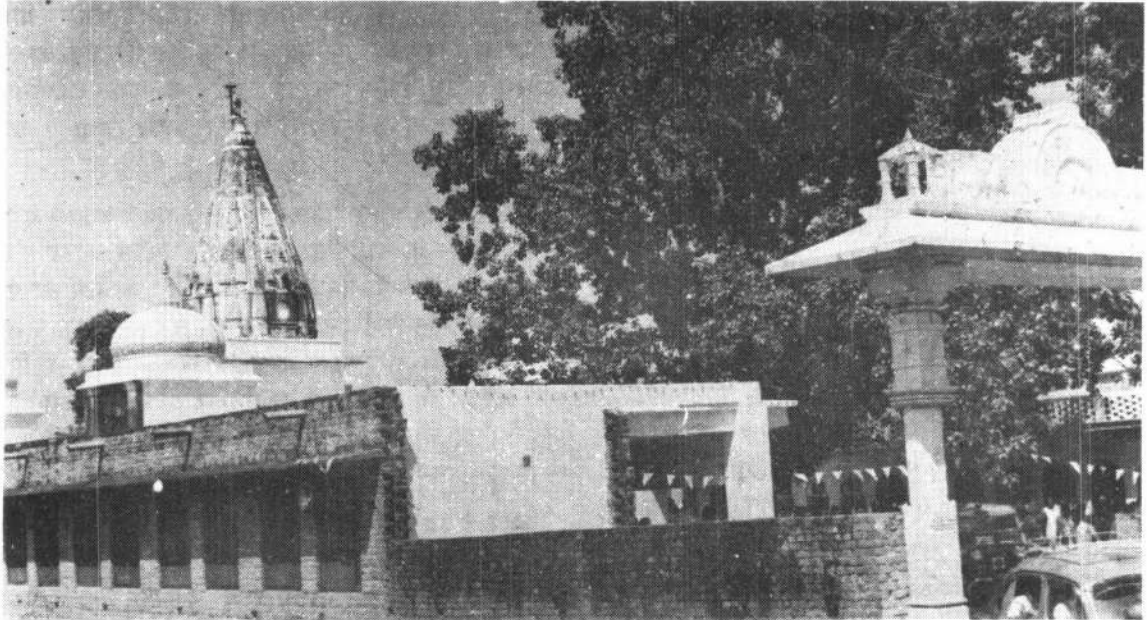
पंचाल प्रदेश की प्राचीन राजधानी कांपिल्य हिन्दुओं एवं जैन मतावलम्बियों के धर्म एवं संस्कृति का संगम रही है। उत्तर प्रदेश में फरुखाबाद जनपद को ही यह गौरव प्राप्त है जहां सांकाश्य, कन्नौज एवं कांपिल्य तीन प्रागैतिहासिक स्थल अपनी प्राचीन सभ्यता, इतिहास एवं संस्कृति को आज तक मूल रूप में सजीव एवं सुरक्षित रखे हुए हैं।

प्राचीन गौरवशाली परम्परा से युक्त पंचाल प्रदेश की राजधानी कांपिल्य कई शताब्दियों से उपेक्षित रही और आज सिमटकर एक साधारण-सा कस्बा ही है। निकट अतीत में ही उत्तर प्रदेश शासन से इसे टाउन एरिया (नगर क्षेत्र) का स्तर प्राप्त हुआ है तथा विकास तथा पर्यटन की दृष्टि से शासन तथा कुछ धार्मिक और स्वयंसेवी संस्थाओं के सहयोग से प्रगति हुई है।

कांपिल्य उत्तर प्रदेश के फरुखाबाद जनपद के अन्तर्गत कायमगंज तहसील मुख्यालय से लगभग दस किलोमीटर दूरी पर पतितपावनी गंगा के तट पर स्थित है। ऐतिहासिक साक्ष्यों की पृष्ठभूमि में यह प्रमाणित है कि फरुखाबाद जनपद (वर्तमान) की संस्कृति अति प्राचीन एवं विश्रुत है। यह जनपद वैदिक युग से प्रसिद्ध पंचाल जनपद का एक अंग रहा है। महर्षि कपिल मुनि, चरक, द्रोण, भगवान विमलनाथ ज्योतिर्विद वराहमिहिर आदि की साधनास्थली कांपिल्य वस्तुतः एक श्रद्धास्पद तीर्थस्थली है।

वैदिक साहित्य, शतपथ ब्राह्मण आदि के साथ-साथ ऐतिहासिक ग्रंथ रामायण, महाभारत आदि के साक्ष्यों से यह प्रमाणित होता है कि वर्तमान फरुखाबाद स्थित पंचाल विशुद्ध वैदिक धर्म का मुख्य केन्द्र था। इस क्षेत्र का वर्तमान कांपिल्य वैदिक काल में विद्या, कला एवं तंत्र विज्ञान के क्षेत्र में प्रसिद्धि प्राप्त कर चुका था। ऐतिहासिक एवं पुरातात्विक महत्व की दृष्टि से पंचाल एवं कांपिल्य पर पर्याप्त शोध कार्य हुआ है और इन शोधों से इस क्षेत्र के प्राचीन तथा अर्वाचीन इतिहास पर, उसके विविध अंगों पर नई सामग्री भी प्रकाश में आई है।

इस क्षेत्र का नाम 'पंचाल' पड़ने के कई कारण बताए गए हैं। एक स्रोत के अनुसार यहां के शासक भृम्यश्व के पांच पुत्रों में यह राज्य बंटा। राज्य के पांच भाग होने के कारण इसकी संज्ञा



जैन श्वेताम्बर मंदिर, कांपिल्य

'पंचाल' हुई। एक अन्य मतानुसार इस क्षेत्र में कृवि, तुर्वशु, केशिन, श्रुजय एवं सोमक नामक पांच समुदाय रहते थे। इसी आधार पर यह क्षेत्र 'पंचाल' नाम से प्रसिद्ध हुआ।

वैदिक साहित्य पर दृष्टिपात करने पर ज्ञात होता है कि ऋग्वेद में 'कृवि' नाम का उल्लेख तो आया है किन्तु 'पंचाल' नाम वहां नहीं मिलता। हां, यजुर्वेद, ब्राह्मण ग्रंथों, आरण्यकों तथा उपनिषदों में 'पंचाल' का संदर्भ उपलब्ध है। इतना ही नहीं परवर्ती संस्कृत साहित्य के अतिरिक्त बौद्ध एवं जैन साहित्य के ग्रंथों में भी पंचाल के उल्लेख मिलते हैं।

विष्णु पुराण (4, 19, 58-59) के अनुसार कांपिल्य नामक राजा द्वारा शासित होने के कारण यह क्षेत्र कांपिल्य कहलाया और उत्तर वैदिक युग में इसने अपनी स्थिति सुदृढ़ बना ली। इसके पश्चिम में ब्रह्मतेज का क्षेत्र (धर्मदेश) था—

'प्राक् सिन्धु सौ वीरा द्वाक्षिणेन हिमवतः पश्चात्कांपिल्या दुदक् पारियावादनवद्यं ब्रह्म वर्चसम्।'

(Geog. of Ancient & Mediaval India)
D. C. Sircar

पतंजलि के महाभाष्य में कांपिल्य का उल्लेख मिलता है। रामायण (बालकाण्ड 33/19) के अनुसार नरेश ब्रह्मदत्त की राजधानी कांपिल्यपुरी लक्ष्मी की निवासभूमि, इस पृथ्वी पर अमरावती के तुल्य थी—

**स राजा ब्रह्मदत्तस्तु पुरी मध्य वसत तदा।
कम्पिल्यां परया लक्ष्म्या देवराजो यथा दिवम्।।**

प्रो. अवधबिहारी लाल अवस्थी के अनुसार भविष्य पुराण में उल्लिखित अठारह राज्यों में एक कांपिल राज्य भी था। जिसकी पहचान कांपिल्य से ही की जा सकती है। कुछ अन्य पुराणों में भी कांपिल्य नगरी का वर्णन मिलता है। कहा जाता है कि इस नगर ने सर्वाधिक प्रकर्ष नरेश ब्रह्मदत्त के शासन काल में प्राप्त किया था। बराहपुराण (152/43) के प्रमाणानुसार—

**पाञ्चाल विषये देवि कम्पिल्यञ्च पुरोत्तमम्।
धनधान्य समायुक्तं ब्रह्मदत्तेन पालितम्।।**

वैदिक एवं पौराणिक साहित्य में पंचाल के कई राजाओं का उल्लेख मिलता है। पंचाल के एक राजा दुर्मुख को सारी पृथ्वी का विजेता कहा गया है। बौद्ध ग्रंथों में इसका नाम 'दुर्मुख' बतलाया गया है। वैदिक ग्रंथों के अनुसार राजा सोम के उत्तराधिकारी जन्तु के बाद उत्तर पंचाल के किसी राजा का उल्लेख नहीं है। हां दक्षिण पंचाल के नरेशों में पथु, उदक्सेन, जनमेजय आदि का उल्लेख मिलता है।

पंचाल नरेश प्रवाहण जैबलि का नाम बड़े आदर एवं सम्मान के साथ लिया गया है। वे अपने काल के महान दार्शनिक थे। कहा गया है कि श्वेतकेतु उन्हीं की परिषद् में अपने ज्ञान की परीक्षा देने गए थे।

महाभारत काल में पंचाल जनपद की प्रसिद्धि में विशेष वृद्धि हुई। महाभारत के प्रसिद्ध युद्ध में, जिसमें प्रायः समस्त उत्तर भारत के राजाओं ने भाग लिया था, उत्तर पंचाल के शासक द्रोण

अपने पुत्र अश्वत्थामा के साथ कौरवों के पक्ष में लड़े थे किन्तु दक्षिण पंचाल नरेश महाराजा द्रुपद द्रोण के विरुद्ध पांडवों के पक्षधर थे। द्रुपद पुत्री द्रौपदी पाण्डवों की पत्नी थीं। स्वाभाविक रूप से यह पक्ष पर्याप्त घनिष्ठ रूप से सम्बद्ध हो गए थे। उपलब्ध प्रामाणों के आधार पर यह कहा जाता है कि पांचाली (पंचालनरेश द्रुपद पुत्री) यज्ञकुण्ड से अपने भाई धृष्टद्युम्न के साथ उत्पन्न हुई थी। यह कुण्ड आज भी कांपिल्य में 'द्रौपदी कुण्ड' के रूप में विद्यमान है।

महाभारतकालीन कांपिल्य के विषय में अधिक एवं विस्तृत जानकारी उपलब्ध नहीं है। कहा जाता है कि महाभारत के महासमर के पश्चात् कांपिल्य में दार्शनिकता का विशेष प्रभाव हो गया था। पूर्व में हमने प्रवाहण जैबलि का उल्लेख किया है—वे सम्भवतः इसी काल में हुए।

पंचाली संस्कृति की भी पर्याप्त चर्चा हुई है। वृहदारण्यक उपनिषद् के साक्ष्य से कहा जाता है कि महाराज जनक की सभा में कुरु-पंचाल के ब्राह्मण विद्वान उपस्थित थे—

'तत्र कुरु पाञ्चालानां ब्राह्मणा अभिसमेता बभूवुः'

(वृहदारण्यक उपनिषद् 3/1/1)

श्वेतकेतु के पिताश्री ने पंचाल नरेश की शिष्यता ग्रहण की थी। स्पष्ट है कि बौद्धपूर्ववर्ती काल में प्रजावान पंचाल ब्राह्मणों ने अपनी साधना से इस समस्त क्षेत्र को महत्वपूर्ण बना दिया।

विभिन्न उपलब्ध प्रमाणों से यह पुष्ट होता है कि राजा द्रुपद के शासन काल में कांपिल्य उन्नति के शिखर पर था और तब इसका विस्तार फरुखाबाद (वर्तमान) एवं पटियाली (वर्तमान एटा जनपद) तक रहा था। अद्वितीय विद्वान दार्शनिक शासक प्रवाहण जैबलि के युग में कांपिल्य का विद्या वैभव अपने चरमोत्कर्ष पर था। वृहदारण्यक एवं छान्दोग्य उपनिषदों के अनुसार देश के विभिन्न क्षेत्रों से ऋषिगण उनके समीप विद्याध्ययन हेतु आया करते थे। ऐतिहासिक विवरण के अनुसार जिस समय अयोध्या में महाराज दशरथ का राज्य था और मिथिला में जनक का, पंचाल के सम्राट उस समय प्रवाहण जैबलि थे। छान्दोग्योपनिषद् के अनुसार जैबलि अध्यात्म तत्त्व एवं ब्रह्म विद्या के प्रकाण्ड आचार्य थे।

एक कथा के अनुसार अरुणि मुनि के पुत्र श्वेतकेतु एक बार अभिमान एवं आत्मविश्वास से आपूरित पंचाल विद्वानों से शास्त्र चर्चा करने कांपिल्य पहुंचे। श्वेतकेतु ने शास्त्रार्थ का प्रस्ताव किया। महाराज जैबलि ने उनसे मात्र पांच प्रश्नों का ही उत्तर देने को कहा किन्तु वे निरुत्तर हो वापस लौट गए। उनके पिताश्री मुनि अरुणि भी इन प्रश्नों को सुनकर आश्चर्यचकित हो गए। अंततोगत्वा वे प्रवाहण जैबलि के पास गए। उन्हें राजा ने सम्मान अपना शिष्य बनाकर अध्यात्म की शिक्षा दी।

विद्या-वैभव के उस शिखर काल में वहां की नारियां भी विदुषी थीं—

**कम्पीलवासिनीम कम्पीलनगरे हि सुभगाः,
सुरूपाः विदग्धा स्त्रियो भवन्ति।**

(उब्बट)

जैन धार्मिक साहित्य एवं प्राचीन जैन सूत्रों के अनुसार कांपिल्य की गणना भारत की दस प्रमुख प्राचीन राजधानियों में की गई है। कांपिल्यपुर को जैनों के 13वें तीर्थंकर विमलनाथ की जन्मभूमि होने के कारण महातीर्थ माना गया है। विमलनाथ का चिह्न वराह (शूकर) है। जिन प्रभुसूरि (ईसा की 14वीं शताब्दी) ने अपने 'विविध तीर्थ कल्प' में कांपिल्य को 'शूकर क्षेत्र' होने का उल्लेख किया है।

जैन साहित्य में 'कांपिलाजी' नाम से प्रसिद्ध कांपिल्य प्राचीन काल से ही जैन धर्मावलम्बियों का एक परम पावन तीर्थ क्षेत्र रहा है। हस्तिनापुर, कौशाम्बी, काकंदी, शौरिपुर (बटेश्वर-आगरा) अहिच्छत्रा आदि की भांति कांपिल्य की स्मृति को सुरक्षित रखने में अनेक अंशों में जैन भक्तों का योगदान महत्वपूर्ण एवं अविस्मरणीय कहा जाएगा। इस नगरी के प्राचीन वैभव एवं श्रीसम्पन्नता के सम्बन्ध में जैन मतावलम्बियों की मान्यता है कि भगवान विमलनाथ के जन्मोपलक्ष्य में देवराज शक्र के आदेश से धनपति कुबेर ने इस नगरी को धनधान्य सम्पन्न बनाया।

जैन कवि पृष्णदंत के अनुसार यह नगरी ऐसे शोभायमान होती थी, मानों स्वर्ग ही धरती पर उतर आया हो। विमलनाथ पुराण के एक उल्लेख के अनुसार—

**'तदैव कांपिलानाम्ना विद्यते परमापुरी
दोषैर्मुक्ता गुणैर्युक्ता धनाढ्या स्वर्गसगृहा'**

इन्हीं स्रोतों के अनुसार कांपिल्य को भी महावीर स्वामी की पदरज स्पर्श करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। जैन परम्परा के अनुसार भगवान पार्श्वनाथ के समवसरण भी कांपिल्य आए थे तथा पंचाल देश में उनका विहार हुआ था।

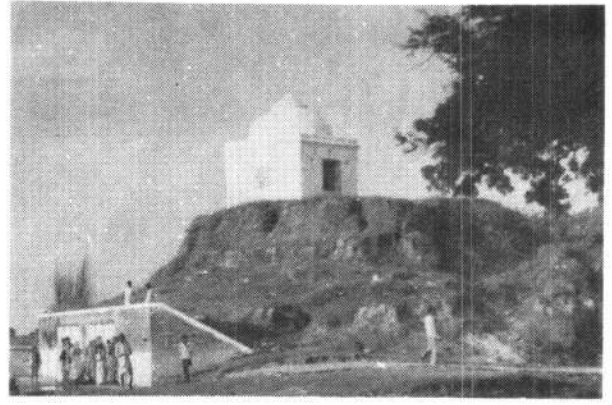
बौद्ध साहित्य के अनुसार बुद्ध परवर्ती भारत में सोलह बड़े राज्य थे। इन्हें 'षोड्स महाजनपद' नाम से अभिहित किया गया है। इनमें से एक पंचाल भी था। कालान्तर में पंचाल जनपद मगध साम्राज्य के अन्तर्गत आ गया। ऐतिहासिक विवरणों के अनुसार महापद्मनन्द द्वारा पंचाल को मगध राज्य में सम्मिलित किया गया था।

पंचाल जनपद के विभिन्न शासकों का शासन काल ईसवी पूर्व दूसरी सदी से ईसवी की चौथी शती तक माना जाता है। ऐतिहासिक विवरण के अनुसार पंचाल नरेश अच्युत गुप्त समुद्रगुप्त द्वारा परास्त किया गया था। कालान्तर में कांपिल्य के उत्खनन में इस शासक के अनेक सिक्के पुराविदों को प्राप्त हुए हैं।

इतिहासकारों की मान्यता है कि गुप्त वंश के शासनकाल में अहिच्छत्रा (उत्तरी पंचाल की राजधानी) की विशेष प्रगति हुई।

वस्तुतः कांपिल्यपुरी एक सिद्ध भूमि रही है। यहां के महत्वपूर्ण, दर्शनीय, ऐतिहासिक एवं धार्मिक दृष्टि से उल्लेखनीय स्थलों में—महाराज द्रुपद के किले के खण्डहर, द्रौपदी कुण्ड, मुगलघाट, कपिल कुटी, रामेश्वरनाथ जी का मन्दिर, जैन दिगम्बर एवं जैन श्वेताम्बर मंदिर माने जा सकते हैं।

कांपिल्य का प्राचीन दिगम्बर जैन मंदिर विशेष महत्व का माना जाता है। इसमें गंगा के गर्भ से प्राप्त भगवान विमलनाथ की



कपिल मुनि की कुटी, कांपिल्य

प्रतिमा प्रतिष्ठित है। एक अनुमान के अनुसार यह प्रतिमा लगभग 1800 वर्ष पुरानी है। यह भारतीय कला की प्राचीनता एवं महानता की अद्वितीय प्रतीक है। पंचाल नरेश महाराजा द्रुपद के किले के अवशेषों के उत्खनन से बड़ी संख्या में मूर्तियां, प्राचीन सिक्के तथा ऐतिहासिक महत्व की बहुमूल्य वस्तुएं प्राप्त हुई हैं। वर्तमान कांपिल्य में गुप्तकालीन एवं मध्ययुगीन कलाकृतियां यत्र-तत्र बिखरी पड़ी हैं। कांपिल्य से प्राप्त अनेक प्रस्तर एवं मिट्टी की मूर्तियां राज्य संग्रहालय लखनऊ में सुरक्षित हैं।

रामेश्वरनाथजी का मंदिर कांपिल्य का सर्वाधिक महत्वपूर्ण एवं प्राचीन दर्शनीय स्थल है। कहा जाता है कि इसे भगवान राम के अनुज शत्रुघ्न ने बनवाया था। इस मंदिर में उन्हीं के द्वारा स्थापित रामेश्वर नामक शिवलिंग है। इस शिवलिंग के विषय में मान्यता है कि इसे रामचन्द्र जी लंका से अपने साथ लाए थे। अशोक वाटिका में सीताजी द्वारा पूजित यह शिवलिंग इसी पृष्ठभूमि में महत्वपूर्ण माना जाता है। कपिल मुनि की कुटी एवं मुगल सम्राट औरंगजेब द्वारा निर्माण कराया गया मुगलघाट भी यहां आने वाले पर्यटकों को आकर्षित करते हैं।

कांपिल्य के कुछ हिन्दू मंदिर भी महत्वपूर्ण एवं दर्शनीय हैं। वस्तुतः गंगातट पर स्थित राजनगर एक ऐसा तीर्थ था जहां ब्राह्मण एवं श्रमण संस्कृतियों का संगम हुआ। यहां के हिन्दू मंदिरों में कालेश्वरनाथजी का मंदिर, कपिल बासिनी देवी का मंदिर, विश्रांतिघाट एवं भैरोगिरी का स्थान उल्लेखनीय हैं।

कांपिल्य कवि एवं साहित्यकारों की भूमि रही है। यहां कई प्रसिद्ध कवि हुए हैं। माथुर चौबे कविवर मुकुटमणि औरंगजेब के काल में हुए जिन्होंने उनसे सम्मान एवं पुरस्कार प्राप्त किए। ब्रजभाषा के प्रसिद्ध कवि तोषर्निधि शुक्ल का नाम भी बड़े आदर के साथ लिया जाता है। यहां के निवासी (17वीं शती) चतुर्भुज मिश्र ने अमरुक शतक पर महत्वपूर्ण टीका प्रस्तुत कर गौरव प्राप्त किया। स्पष्ट है कि कांपिल्य दीर्घकाल तक कला और साहित्य का मुख्य केन्द्र रहा। इस क्षेत्र के विद्वानों, मनीषियों, ऋषियों ने अनेक शाश्वत मूल्य के ग्रन्थों की रचना कर सरस्वती के भण्डार की श्रीवृद्धि में योग दिया। कहा जाता है कि सांख्यकार कपिल ने योग की रचना कांपिल्य नगर में ही की थी।

(शेष पृष्ठ 42 पर)

देवी-देवता

सुरेश चन्द्र गुप्त

आज सुबह से ही मूड ठीक नहीं था सुनील का। सोचना कुछ चाहता था, विचार बहक किसी और तरफ जाते थे। अनमनापन था कि कहीं गहरे चस्पाँ हो गया था। दोपहर से चार बार चाय पी, सिगरेट का पूरा पैकेट खाली कर दिया, रामबहादुर को डांटकर अपना गुस्सा उस पर उतारना चाहा, लेकिन कहीं कुछ ऐसा टूटा था कि जुड़ने में ही नहीं आ रहा था। न कुछ करने का होश था, न कहीं जाने की इच्छा। चौकने की बारी तब आई जब कान में आवाज पड़ी—“ऐसी भी कौन-सी समस्या है भई, जो आज यार का चेहरा इस कदर उतरा हुआ है?”

बात कहने वाला जसवन्त था—सुनील का जिगरी दोस्त। न सुनील ने उससे कभी कुछ छुपाया था, न जसवन्त ने दिल खोल कर रख देने में कभी संकोच किया था। उसके आने से मन को बाकई सुकून मिला। लेकिन चेहरे पर उदासी बरकरार रही। फीकी-सी हंसी के साथ कहा—“क्या बताऊँ जस्सी, आज मुझे यकीन हो गया कि यह देश कभी तरक्की नहीं कर सकेगा। जिधर जाओ, वहीं अनाचार।...जहां देखो, वहीं अपनी ही जेब भरते जाने की लालसा।”

“कुछ हम भी तो सुनें, आखिर बात क्या हुई? इतने निराश तो तुम पहले कभी नहीं हुए थे। आज ही कौन-सा पहाड़ टूट पड़ा कि पूरी व्यवस्था से विश्वास उठ गया?”

“बात कुछ ऐसी है कि तुम मुझसे भी ज्यादा संजीदा हो जाओगे। सुबह बिजली के दपतर गया था—बिल ठीक कराने के लिए। वहां अजब नजारा देखने को मिला। पहली बात तो यह कि डीलिंग क्लर्क साढ़े नौ की जगह सवा दस बजे सीट पर आया। आने पर इन्तजार करते लोगों पर एक सरसरी-सी निगाह डाली। किसी ने कुछ कहना चाहा तो हाथ के इशारे से रोक दिया। फिर दीवार पर लगे बक्से में रखी विघ्न-विनाशक की मूर्ति को प्रणाम किया। अगरबत्ती जलायी। साथ में रखी लक्ष्मी जी की मूर्ति पर फूल चढ़ाए। इसके बाद एक-दो साथियों से चुललबाजी की। हम में से एक बुजुर्ग सरदार जी ने कुछ कहना चाहा तो पहले तो उनकी तरफ उचटती निगाह से देखा, फिर अपनी सीट पर आकर कुछ देर शरीर को सीधा किया। तब चपरासी को दो कप चाय लाने का आर्डर दिया—एक अपने लिए और दूसरा सामने की सीट पर बैठी महिला-क्लर्क के लिए। अब कहीं उसका रुख हमारी तरफ हुआ...।”

“बड़ी लम्बी दास्तान है, भई। अब खत्म भी करो।” जसवन्त ने ऊबकर कहा।

“मैं खुद इस यातना से फिर नहीं गुजरना चाहता, जस्सी। तुम्हें ही सुना रहा हूँ। मां और भाभी ने कितना पूछा, पर मैंने कुछ न कहना ही बेहतर समझा।...हां, तो हुआ यों कि मुझसे आगे जो महाशय खड़े थे उन्होंने दस रुपये का नोट उनके सामने के रजिस्टर के नीचे दबाते हुए कहा—‘शर्माजी, मेरा चैक तो बन गया होगा।’ शर्माजी ने तिरेपन रुपये अस्सी पैसे का चैक तुरन्त उनके हवाले किया। अब मेरी बारी थी। मैंने बिल सामने रखकर कहा—‘इसमें पिछली बकाया राशि के रूप में एक सौ साठ रुपये की मांग की गई है जबकि इसका भुगतान मैं कर चुका हूँ। रसीद यह रही।’

शर्माजी ने सब-कुछ बड़े ध्यान से सुना। तब तक उनकी चाय भी आ गई। दो घूंट पीकर मेरी बात का कुछ भी जवाब न देकर उन्होंने बाएं हाथ की तीन अंगुलियां मेरे सामने कर दीं। मैं कुछ समझा नहीं तो बोले—‘बरखुरदार, अभी एक अंगुली वाले जो साहब यहां से गए हैं उन्होंने राह दिखा दी तब भी कुछ नहीं समझे? देखो, बिल और रसीद यहां छोड़ जाओ। अगले हफ्ते इसी दिन तीन की कोर्निश करके चैक ले जाना।’

इसके बाद मेज पर लगे शीशे के नीचे रखे शिवजी के चित्र को प्रणाम करते हुए शर्माजी ने कहा—‘सब ठीक हो जाएगा, चिन्ता न करो।’

शीशे के नीचे चित्र में शिवजी की तांडव आकृति अंकित थी। मुझे लगा, अगर शर्माजी से और कुछ कहा या उनकी बात का विरोध किया तो शिव-भक्त होने के नाते वे भी तांडव-मुद्रा में आ जाएंगे। बिल और रसीद मैं अपने साथ ले आया, असन्तोष की तीखी नजर से उन्हें देखा भी। लेकिन करूँ क्या, यह न तब समझ सका, न अब। कुछ करना चाहता भी तो वहां खड़े एक युवक ने एक ओर ले जाकर कहा—‘भाई साहब, यहां का यही हाल है। शिकायत करोगे, मगर किससे? जिस अफसर के पास जाओगे, वह चार चक्कर फिजूल लगवाएगा। आना फिर शर्माजी की ही शरण में पड़ेगा।’

अब तुम्हीं कहो, क्या इस देश का कायाकल्प कभी हो सकेगा?”

उत्तर जसवन्त के पास भी नहीं था। □

सी 88 इन्द्रपुरी
नई दिल्ली-110012

सामान्य जन के अधिष्ठाता कुसुमाग्रज

पुस्तक: इसी मिट्टी से; लेखक: कुसुमाग्रज; प्रकाशक: भारतीय ज्ञानपीठ, 18 इंस्टीट्यूशनल एरिया, लोधी रोड, नई दिल्ली; पृ.: 142; मूल्य: 60 रुपये।

दि. वा. शिराडकर मराठी के प्रसिद्ध कवि हैं जो कुसुमाग्रज के नाम से लोकप्रिय हैं। उनका रचनाकाल चौथे दशक से लेकर नवें दशक तक छह दशकों में फैला हुआ है। उन्होंने अन्य साहित्य विधाओं में भी रचना की है, परन्तु उनका कवि रूप सर्वोपरि है जिसके लिए उन्हें भारतीय ज्ञानपीठ पुरस्कार भी प्राप्त हुआ है। 'इसी मिट्टी से' उनका नवीनतम कविता संग्रह है जो हिन्दी में उनका प्रथम कविता संग्रह है। इसमें उनकी चुनी हुई 88 कविताएं हैं जिनका चयन कवि ने स्वयं किया है और उनका अनुवाद मराठी-हिन्दी के मर्मज्ञ साहित्यकारों ने किया है।

इन कविताओं के पारायण करने पर यह प्रतीति मिलती है कि उनके पास व्यापक जीवन के विराट अनुभव हैं जिन्हें उन्होंने अपनी अनुभूति पर उतारा है और गहराई में जाकर सूक्ष्मता के साथ कवित्वमयी अभिव्यक्ति के साथ अपनी कविता में प्रस्तुत किया है। उनकी कविता संवेदना से सिकत और संप्रेषणीयता से युक्त होती है। वह सामान्य से सामान्य विषय को अपनी विशेष काव्यदृष्टि और चित्ताकर्षक अभिव्यक्ति से विशिष्ट बना देते हैं। वह तथ्यों एवं सत्यों पर आधारित स्टेटमेंट्स यानी वक्तव्य नहीं देते, बल्कि संवेदना का अंग बना कर रसमयी अभिव्यक्ति करते हैं।

कथ्य के स्तर पर उनकी सर्वोपरि विशेषता यह है कि वह सामान्यतः अपनी कविताओं में सामान्य जन को अपनी कविता का मुख्य आधार बनाते हैं। वह सामान्य जन के उद्घोषक हैं जिसके प्रति अपनी पक्षधरता निभाते हैं। वह इस वर्ग के प्रति सहानुभूति प्रदर्शित नहीं करते, दयाभाव नहीं दिखाते, बाहरी तौर पर संवेदना प्रकट नहीं करते, बल्कि वह उसके साथ संलग्नता का अनुभव करते हैं, अपना ही अंग समझते हैं। वह उसके बारे में ऊंचाई पर चढ़ कर नहीं बोलते हैं, बल्कि निचले धरातल पर खड़े होकर, उसके बीच में घुल-मिल कर आत्मलीनता के साथ जैसे अपने बारे में या अपने लिए लिख रहे हैं। शायद इसीलिए वह सामान्य जन को सर्वोच्च आसन पर प्रतिष्ठित करते हैं। वह उसे महापुरुष से भी अधिक महत्व दे देते हैं जिसकी मृत्यु एक बार शत्रु द्वारा और दूसरी बार भक्तों द्वारा होती है। इसलिए सामान्यजन के लिए कवि की प्रार्थना है—ऐसी संगमरमरी मृत्यु तुम्हें न मिले। इस शुभ दिन पर यही मेरी आंतरिक प्रार्थना है (प्रार्थना)।

वह यह मानकर चलते हैं कि रात के बाद दिन और अंधेरे के बाद उजाला आता है। अतः उनकी कविताओं में विश्वास का स्वर सबसे ऊंचा होता है (यौवन)। अन्य कविताओं में ही नहीं 'इसी मिट्टी से' कविता में भी वह विश्वासी जान पड़ते हैं जहां ईश्वर की मृत्यु की कल्पना के साथ नए ईश्वर की स्थापना भी है जिसे भले ही नास्तिकता कहा जाए। इसी प्रकार 'सूर्यपुत्र' में अनास्था ही नहीं, अपने ढंग की आस्था भी है।

वह यह मान कर चलते हैं कि जीवन में आगे बढ़ा हुआ कदम पीछे नहीं लौटता। आगे बढ़ने से बलिदान देना पड़ सकता है, परन्तु विशेष उपलब्धि भी मिल सकती है (कोलंबस का गर्वगीत)। उन्होंने परतंत्र भारत में क्रांति के गीत गाए (गरजो जयजयकार क्रांति का)। वह देश-विदेश की घटनाओं से मुग्ध होकर कविताएं लिखते हैं (जाओ जरा पूरब की ओर, जलियांवाला बाग)। वह प्रकृति चित्रण में सिद्धहस्त हैं, परन्तु उसके माध्यम से जीवन के रहस्यरूपों का उद्घाटन करते हैं (पृथ्वी का गीत, दीपस्तंभ, चरणाचिह्न, चिड़िया, प्रवासी पक्षी, उषा)। वह नाटकीयता एवं दृश्यतात्मकता को उभारते हैं (अहिनकुल)।

वह छंदबद्ध कविताएं लिखते हैं और छंदहीन भी। उनकी कविताओं में प्रकृति जगत है और मनुष्य जगत है। प्रेम के भिन्न स्वरूप को अभिव्यक्ति देते हैं और सबसे ऊपर सामान्यजन को स्थापित कर देते हैं। □

डा. रत्नलाल शर्मा

डी-201, पुंडरीक विहार,
पीतमपुरा, दिल्ली-110034

सरल बुनावट में गहरी संवेदनाओं की कहानी

एक पीढ़ी का दर्द; लेखक: डा. क्षमा गोस्वामी; प्रकाशक: नेशनल पब्लिशिंग हाउस, 23, दरियागंज, नई दिल्ली-2; पृष्ठ संख्या: 112; मूल्य: 32 रुपये

क्ष मा गोस्वामी का कहानी संग्रह 'एक पीढ़ी का दर्द' उन समालोचकों को भ्रमित कर सकता है जो कहानी में अतिनाटकीयता के आदी हो चुके हैं। सच तो यह है कि आज हिन्दी कहानी एक प्रकार के घात-प्रतिघात के दौर से गुजर रही है। उसमें मिलने वाले जड़ाऊपन ने एक ऐसे चक्रव्यूह की रचना कर डाली है, जिसमें फंसकर कई जाने-माने कहानीकार भी अपना स्तर खो चुके हैं। परिणाम यह हुआ है कि अनेक लेखक-लेखिकाएं साहित्य में एक बासीपन-सा ले आए हैं। साहित्य में क्या इसे संवेदनाओं का थोथरा हो जाना समझ लेना चाहिए?

पर यह निश्चय है कि किसी भी प्रकार की सस्ती पापुलेरिटी के मोह से साहित्य में कोई प्रतिमान शायद ही स्थापित हो सकेगा।

यह सब लिखते समय मुझे कुमाऊं के जीवन पर लिखने वाली एक लेखिका का अनायास ही स्मरण हो आया है। अपनी पठनीयता के बाद भी उनके चरित्रों का स्कैंडल पाठकों को गहराई से शायद ही कुछ दे पाया है। इसी कारण वर्षों लिखने के बाद भी उनकी कोई विशेष पहचान हिन्दी कहानी में नहीं उभर सकी।

'एक पीढ़ी का दर्द' को पहली बार पढ़ने में पाठकों को सपाट लग सकता है। किन्तु क्षमा की कहानियों में छिपी गहरी संवेदनाओं को महसूस करने के लिए पाठक को संवेदनशील होना भी आवश्यक है। और इस सच्चाई के साथ देखा जाए तो 'एक पीढ़ी का दर्द' की कहानियों में जीवन के अनेक रंग मिलते हैं। इनका कोई भी कथ्य कृत्रिमता से ग्रस्त नहीं। साधारण की विराटता इन कहानियों की विशेषता है। कहानियों के पात्र जीवंत हैं और वे संवेदनाओं के धरातल पर कहीं न कहीं जुड़े हैं। वास्तव में हम कहीं न कहीं किसी रूप में अपने जीवन का प्रतिबिम्ब ही इन कहानियों में पाते चलते हैं।

उदाहरण के लिए 'पर्दे' कहानी की व्यथा आज के जीवन में फैली अनेक की व्यथा है जिसे कहानी के अंत में नायक पूरी तरह समझने में सफल होता है। आधुनिक जीवन में तथार्थित अभिजात्य जीवन के प्रति उसका मोह-भंग कहानी में बहुत अर्थवत्ता प्रदान करता है—“यह मकान, कार, टी. वी., रेडियो, वीडियो, यह टू इन वन, यह सुविधा, यह आराम—इन सबसे अधिक मनुष्य के लिए कुछ और भी महत्वपूर्ण है—उसका अपना अंतरंग परिवेश। वह अंतरंग परिवेश, जिसमें वह पूरी आत्मा के साथ जीता है। जहां वह पूरी तरह से उन्मुक्त है—उठने-बैठने और कहने-सुनने के लिए। उसने निश्चय किया था—वह मां को अपने शहर में रखकर उसके शरीर को उसकी आत्मा से नहीं काटेगा।”

निश्चय ही कहानियों में सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक स्तरों पर मिलने वाले चित्रण बड़े रोचक और मर्मस्पर्शी बन पड़े हैं। क्रांति, दुर्घटना, बौने, लाल साड़ी आदि कहानियां हमें कुछ न कुछ सोचने को बाध्य करती हैं। ये कहानियां लेखिका की असीम संभावनाओं और पैनी दृष्टि की ओर संकेत देती हैं। कहानियों में मिलने वाली विविधता, लेखिका की सृजनात्मकता को बार-बार पाठकों के सामने लाती है।

पर कुछ कहानियों में कहीं-कहीं पर शैथिल्य का बोध भी पाठक को अनुभव हुए बिना नहीं रहता। जीवन के अनेक गहरे पक्ष भी लेखिका से अछूते रह गए हैं। संग्रह में स्त्री-पुरुष के सम्बंधों को लेकर कोई रचना नहीं है। यह बात 'एक पीढ़ी का दर्द' के लिए एक खास प्रकार के मनोवैज्ञानिक आयाम की कमी को दर्शाती है।

समीक्षक को पूरा विश्वास है कि आने वाले समय में क्षमा गोस्वामी अपनी रचनाओं द्वारा जीवन के नए पृष्ठों को समझने का अवसर दे सकेंगी। □

वे. के. जोशी

3524-डी ब्लॉक, पाकेट-3,
वसंतकुंज, नई दिल्ली

नान्या गति : वाणी का पराजयवादी संघर्ष

उपन्यास : नान्या गति; लेखक : प्रेमलाल भट्ट; प्रकाशक : नेशनल पब्लिशिंग हाउस 23, दरियागंज, नई दिल्ली-110002; मूल्य : 55 रुपये।

हिन्दी कथा साहित्य में सामाजिक उपन्यासों की एक लम्बी परंपरा रही है, जिसके तहत अनगिनत 'कथ्य' विभिन्न कथा-फलकों पर विकसित होकर चर्चा के केन्द्र में आए हैं। जाहिर है, 'कथा' का यह बहुआयामी फलक, सामाजिक विकास के तहत विभिन्न रूपों में अभिव्यक्ति पाए। चाहे वह संघर्षरत भारतीय समाज के बिखरते हुए सपनों को संजोए अथवा गतिहीन होकर विश्रृंखलित हो जाए। लेकिन प्रेमलाल भट्ट का उपन्यास 'नान्या गति' इन दोनों दिशाओं में विकसित होता है और बिखरते हुए सपनों को आखिरी दम तक समेटते हुए भी टूट जाता है। यह विवाद का विषय हो सकता है कि यह 'टूटन' कहां तक सही है तथा क्या उपन्यासकार ने इसे सहज भाव से टूट जाने दिया है या गरीबी की दास्तान सुनाते-सुनाते मनचाहे कथनों को पूरा करने के लिए खुद ही तोड़ दिया है।

निश्चय ही किसी कृति की समीक्षा में ये बातें नहीं आनी चाहिए क्योंकि जिन सीमाओं में आज पुस्तक-समीक्षा अंतर्निहित होते जा रही है, उसमें कथ्य और भाषा का सोदाहरण परिचय ही पर्याप्त है। खैर कथा और भाषा की चर्चा से परे मैं प्रेमलाल भट्ट के कुछ विचारों को आपके समक्ष रखना चाहूंगा। उनके उस उपन्यास के अंतिम हिस्से में एक वाक्य आया है—“परिवर्तन के लिए क्रांति चाहिए और क्रांति बिना रक्त के नहीं आती।” (पृ. 205) और यदि हम आगे बढ़ें तो कह सकते हैं कि रक्त क्रांति का यह सपना आज कितना बेमानी हो गया है, खासकर भारत में, जब कि यहां के निम्नवर्गीय तबके का संघर्षरत व्यक्ति, जब विकसित होकर ऊपर पहुंच जाता है तो उसके साथ ही उसकी सोच बदलने लगती है और अंत में वह अपने वर्ग को लगभग भूल जाता है। स्पष्टतः 'नान्या गति' का नायक वाणी ऐसा नहीं है और न ही उपन्यासकार की भी यह मंशा है कि वह ऐसा बने। सम्भवतः इसी कारण जब किसी उच्च नौकरी के लिए गरीबी से संघर्षरत वाणी के पास साक्षात्कार पत्र आता है तो बीमारी के बहाने एक प्रकार से लेखक उसकी हत्या कर देता है।

दरअसल उपन्यासकार यहां केवल वाणी की कहानी नहीं कहना चाहता है। वह इस बात की ओर संकेत करना चाहता है कि कैसे एक पहाड़ी युवक अपनी गरीबी से तंग आकर चाचा के साथ शहर आता है, फिर कैसे समाज के धनिक वर्गों द्वारा शोषित होते हुए, चाहे वह प्रतापसिंह हो या लभायाराम, अपने को असहाय महसूस करता है। यद्यपि इस असहाय अवस्था में उसके कुछ परिचित उसकी मदद करते हैं तथा अपने परिवार खासकर दादी से उसे स्नेह प्राप्त होता है और जगदीशपुर की छोटी मालकिन की

उस पर कृपा भी होती है, लेकिन इन सारे सहयोगों को नकारते हुए वह क्रमशः आत्मिक संघर्ष की ओर अग्रसरित होते जाता है। हाँ, इस बीच उसके जीवन में हर जगह अंजु, मेहर, श्यामला, रमरतिया, लीला जैसी पात्राएँ आती हैं तथा इनमें खासकर रमरतिया और लीला के संपर्क में आकर वह क्रमशः भक्ति, सहानुभूति, प्यार, दुलार और स्नेह के बीच जीते हुए उनसे प्रेरणा भी प्राप्त करता है लेकिन अंततः उसका 'पराजयवादी व्यक्तित्व' और अति उत्साहमय प्रवृत्ति उसके विचारों, उसके संघर्षों और आगे बढ़ने की इच्छाशक्ति का अनायास ही गला घोट देती हैं। उसका संघर्ष, सामाजिक होते हुए भी व्यक्तिगत स्तर पर आकर टूट जाता है। यही कारण है कि गांव से शुरू हुई उसकी यह यात्रा इलाहाबाद, लखनऊ, जगदीशपुर और लालगंज के इर्द-गिर्द चक्कर काटती हुई अंततः कोटद्वार में 'नान्या गति' को प्राप्त होती है।

लेकिन सवाल यह उठता है कि उसके संघर्ष की इस 'नान्या गति' का कारण क्या है? क्या एक गरीब परिवार में जन्म लेना? या उच्च भारतीय समाज की गरीबों के प्रति दुरावपूर्ण सामूहिक वैचारिकता? निश्चय ही ये कुछ ऐसे मुद्दे हैं जिन पर बातचीत की जा सकती है। औपन्यासिक शिल्प की दृष्टि से उपन्यास रोचक है, वाणी और उसके साथ ही दादी की कथाएँ समानांतर रूप से विकसित होती हैं। भाषा सरल है। □

देवेन्द्र कुमार चौबे

126, ई, बटमपुत्र छात्रावास,
जवाहरलाल नेहरू वि. वि., नई दिल्ली

हारा हुआ आदमी

पुस्तक : हारा हुआ आदमी; प्रकाशक : पारुल प्रकाशन;
889/58, त्रिनगर, दिल्ली-35; लेखक : रूप सिंह चंदेल; पृष्ठ :
118; मूल्य : 35 रुपये।

आठवें दशक की कहानी में सामयिक परिवेश का यथार्थ चित्रण है। इसी दशक के कथाकार रूपसिंह चंदेल की कहानियाँ अपने दशक की परिचायक हैं। 'हारा हुआ आदमी' परंपरागत नायकों से भिन्न सामान्य, मध्यम और निम्न वर्ग की कहानी है। इस संग्रह के नायकों को दो जून रोटी के लिए संघर्षमय जीवन व्यतीत करना पड़ता है। इसमें न तो आदर्श की बातें हैं न ही किसी प्रकार की प्रेरणा है, बस आज के सामाजिक संदर्भों में उलझन, बेबसी और लाचारी की बात है।

'सुनो पुनिया' में गांव की पृष्ठभूमि है। गांव में व्याप्त जातिभेद को 'मोह' में भीमा उर्फ भीमसिंह के माध्यम से जीवंत किया है। भीमसिंह का बेटा सूरज संघर्षहीन और सुविधापूर्ण जीवन जीने के बावजूद स्वयं अपने पिता से टकराव पर उतर आता है। वह इतना भौतिकवादी हो गया है कि अपने पिता की भोजन जैसी मूल जरूरत को भी पूरा नहीं करता। सारे गांव को अपनी शक्ति से

झुका देने वाला भीमा पोते के मोह में पुत्र के साथ झुक कर रहने को मजबूर है।

गांव की ही साहूकारी व्यवस्था पर कटाक्ष है—'मुकदमा'। गांव के गरीब लोगों को जरूरत बेजरूरत उधार लेने के लिए मजबूर करना और कर्ज चुकाने में असमर्थ उस व्यक्ति की सम्पूर्ण सम्पत्ति हथिया लेना, यही गांवों में होता है।

कारखाना संस्कृति से जुड़ी कहानियाँ हैं 'हारा हुआ आदमी' और 'आखिर कब तक'। मालिक द्वारा मजदूर का शोषण, सिर उठाने पर सदा के लिए लाचार बना देना, सामान्य बातें हैं। यूनियनबाजी कारखानों के लिए नई बात नहीं। यूनियन के नेता और कारखाना-मालिकों में सौदेबाजी से तो सभी परिचित हैं। 'हारा हुआ आदमी' अर्थात् संदीप इन दो पाटों के बीच में घुन-सा पिस जाता है।

मशीनी सभ्यता, कारोबारी आचरण, उथले दिखावटी संबंधों और स्वार्थपूर्ण विचारों के इस दौर में एक सामान्य, गरीब और बेबस आदमी की बड़ी से बड़ी समस्या भी संभ्रांत वर्ग को दिखाई नहीं देती। 'आखिर कब तक' के विश्वनाथ की मां जिन्दगी और मौत के बीच झूल रही है पर फैक्टरी-मैनेजर की पत्नी को अपने लान की घास काटना अधिक महत्वपूर्ण लगता है।

संग्रह की लगभग सभी कहानियों में सर्वहारा, शोषित और प्रताड़ित लोगों की ही व्यथा है। उनके पात्र हारे और विवश जरूर हैं पर उनमें मुक्त होने की आकांक्षा है। □

पहली स्थिति : अंतिम स्थिति

पुस्तक : पहली स्थिति : अंतिम स्थिति; लेखक : चन्द्रा औलक; प्रकाशक : ज्ञानभारती, 4/14 रूप नगर, दिल्ली-7; पृष्ठ : 123; मूल्य : 35 रुपये।

चन्द्रा औलक का कथा-परिवेश सामान्य कथा परिवेश से हटकर है। नारी मनोविज्ञान को उन्होंने बखूबी समझा है। 'पहली स्थिति : अंतिम स्थिति' में आधुनिक संदर्भों में नारी की भूमिका को हर कोण से उभारा गया है। पात्रों और घटनाओं का चित्रण ऐसा है कि पाठक उनसे सहज ही तादात्म्य स्थापित कर लेता है।

स्त्री-पुरुष का परस्पर प्रेम और टकराव सनातन सत्य है। भौतिकता बढ़ने के साथ-साथ टकराव की प्रक्रिया में भी तेजी आई है। इस टकराव का मूल कारण नारी का अपने अधिकारों के प्रति सजग होना है। 'युद्ध और दगाबाज', 'इतिहास' और 'नयायुग : पुराना युग' में स्त्री और पुरुष का पति-पत्नी वाले रूप में संघर्ष है। इनके नारी पात्र सहनशील और उत्तरदायित्व निभाने वाले हैं, इसके विपरीत पुरुषपात्र आक्रामक और रैर जिम्मेदार हैं। पुरुष घर से बाहर के संसार की अपेक्षा घर के भीतरी संसार में अधिक दखल रखते हैं जिसे अब तक स्त्री का

कार्य क्षेत्र माना जाता रहा है। टकराव की जड़ यही है। स्त्री का कार्यक्षेत्र बाहर तक विस्तृत हो जाने से पुरुष के अहं को चोट पहुंचती है, फलस्वरूप वह स्त्री के प्रति और आक्रामक हो जाता है।

'पहली स्थिति : अंतिम स्थिति' संग्रह की महत्वपूर्ण कथा है। लेखिका को स्त्री जाति से विशेष सहानुभूति है। इस कहानी में पुरुष के माध्यम से स्त्री का विवेचन किया गया है। इसके अतिरिक्त हर कहानी में स्त्री पात्र ही स्त्री के विषय में सोचते हैं। स्त्री के बिना किन-किन समस्याओं से पुरुष को जूझना पड़ता है और स्त्री के होने पर उसे कितनी सुविधा रहती है इस कथा का यही मूल विचार है।

(पृष्ठ 37 का शेष)

कांपिल्य एवं उसके समीपवर्ती क्षेत्र के विषय में स्थानीय नागरिकों में अनेक जनश्रुतियाँ प्रचलित रही हैं। राजा द्रुपद द्वारा बसाया गया याजपुरा (जिजपुरा) कांपिल्य से लगभग 5 कि. मी. पूर्व में स्थित है। यहां से पूर्व दिशा में ही मेदकुण्ड या मेदकुण्डा स्थित है। अर्जुन द्वारा मीन वेध की घटना यहीं हुई थी, ऐसी मान्यता है। पैल ऋषि का तपस्थान (मढ़ी) कांपिल्य के समीप ही है। कहा जाता है कि जहां शिखण्डी स्त्री से पुरुष बना था, वह स्थान मुंडवन (मुंडौल) कांपिल्य से लगभग 4 कि. मी. पर है।

ऐतिहासिक एवं पुरातात्विक महत्व की इस विलुप्तप्राय नगरी की ओर कांपिल्य महोत्सव (1975 में सम्पन्न) के माध्यम से शासन, इतिहासकारों, पुराविदों, सामाजिक कार्यकर्ताओं एवं संस्थाओं का ध्यान पहली बार आकृष्ट हुआ। क्षेत्रीय जनता में भी एक प्रकार से जागरूकता आई तथा स्थानीय ऐतिहासिक दृष्टि से महत्वपूर्ण स्थलों के जीर्णोद्धार का कार्य प्रारम्भ किया गया है।

उत्तर प्रदेश शासन ने छठी पंचवर्षीय योजना में अनेक विकास कार्य करने तथा कांपिल्य को एक श्रेष्ठ पर्यटन स्थली के रूप में

(पृष्ठ 10 का शेष)

'दर्द फिर लौट आया', ए.आर. अकेला का 'भीमजान गीतांजलि', अर्चना त्रिपाठी का 'शब्द बोलेंगे', माताप्रसाद 'मित्र' के 'अछूत वीरांगना', 'भीम चरित्र मानस' (आल्हा छंद में), व 'भीमशतक', सं. रा. धरणीधर का 'महुआ केशर', ओमप्रकाश मेहरा का 'तलाश जारी है', देवेन्द्र दीपक का 'भूगोल राजा का : खगोल राजा का' आदि काव्य संकलनों तथा विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में समय-समय पर प्रकाशित अन्य कवियों की कविताएं ऐसी रचनाएं हैं, जो समकालीन दलित कविता के कर्म को परिभाषित करती हैं। कवि का आत्म-विश्लेषण, संकल्प, दृष्टि का पैनापन और सामाजिक सम्बद्धता के दायित्व के प्रसंग इससे जोड़ते भी हैं।

इस प्रकार दलित कविता का भविष्य सामाजिक संघर्ष के भविष्य से जुड़ा है। जिस तरह मानव का इतिहास वींचत और सम्पन्न के संघर्ष से आगे बढ़ा है, उसी तरह कला-संस्कृति और साहित्य का भी। कला-संस्कृति-साहित्य सामाजिक स्थितियों

लेखिका नारी की अपूर्णता को अनुभव करते हुए इस कथा-संग्रह के माध्यम से स्त्री को आत्मविश्वास दिलाना चाहती है कि अपनी सहनशील प्रवृत्ति के कारण ही वे टूटन, एकाकीपन, निराशा और अपूर्ण व्यक्तित्व के बावजूद पूर्णता और संतुलन को पा लेंगी।

संग्रह की भाषा सरल है परन्तु शैली में प्रवाह बहुत धीमा है, कुल मिलाकर यह कथा-संग्रह मनन के लिए तो है लेकिन बौद्धिक मनोविनोद या गुदगुदाहट के लिए नहीं।

ऋता विकल्प

ए. जी. 1/105 ए,

विकासपुरी, नई दिल्ली-18

विकसित करने का स्तुत्य संकल्प भी लिया। इस दिशा में अभी कुछ ही कार्य हुआ है।

कांपिल्य तीर्थ की वर्तमान व्यवस्था जैन श्वेताम्बर महासभा उत्तर प्रदेश की सुदक्ष देखरेख में चल रही है। यहां जैन समाज द्वारा एक अस्पताल का निर्माण कराया गया है। श्री तीर्थराम पूनमचन्द्र ट्रस्ट के आर्थिक सहयोग से वर्द्धमान जैन सार्वजनिक चिकित्सालय क्षेत्र की सेवा में संलग्न है।

वस्तुतः कांपिल्य में अभी तक जो विकास कार्य हुए हैं, पर्याप्त नहीं कहे जा सकते। वस्तुतः राजकीय संरक्षण एवं सक्रिय सहयोग के अभाव में अभी तक इसका गौरव पूर्ण अतीत प्रकाश में नहीं आ सका है। प्रदेश शासन के साथ ही साथ भारत सरकार का पर्यटन मंत्रालय यदि पुराविदों के सहयोग से विशेष रुचि एवं महत्वपूर्ण विकास योजनाओं एवं उत्खनन को कार्यान्वित कराने हेतु प्रस्तुत हो तभी इस समग्र क्षेत्र की महाभारतकालीन संस्कृति के अवशेषों को संजोया एवं संवारा जा सकेगा।

अध्यक्ष हिन्दी विभाग

लक्ष्मी यदुनन्दन महाविद्यालय

कायमगंज (फर्रुखाबाद) उ. प्र.

और स्थान के संघर्ष से आकृति पाकर गतिशील होते हैं। यह भी सही है कि सामाजिक बदलाव को तेजस्वी, ओजस्वी और सार्थक करने में कला-संस्कृति और साहित्य की अहम् भूमिका रही है, इसलिए वह अपने स्तर पर अपनी स्थिति और स्थान में भविष्य का निश्चय करती है। जाति-वर्ग-वर्ण में बंटे हुए धर्मान्ध समाज में दलित कविता का रचनाकार अपनी खोई हुई आवाज को तलाशता है और उसे अभिव्यक्ति देता है, वह एक समता-ममता वाले समाज की कल्पना करता है। इसीलिए वह बहुसंख्यक दलित जनसाधारण को सचेत, जागृत कर संघर्ष-पथ पर क्रांति के लिए उद्बलित करता है और स्वाभिमान के साथ 'सीना तान' कर जीने का अदम्य साहस प्रदान करता है। दलित रचनाकार यह भी जानता है कि हिन्दी की समकालीन कविता में वह दौर छूट गया, जो राहों के अन्वेषण को लक्ष्य मानता था, वह तो 'दलित कवियों' का दोवा करता है और 'दलित चेतना' का रास्ता दिखाता है, जिसकी यात्रा अनवरत है। □

20, बागपुरा, सांवेर रोड

उज्जैन (मध्य प्रदेश)



नौएडा में अंतर्राष्ट्रीय कवि सम्मेलन

उत्तर प्रदेश समाज, दिल्ली की नौएडा शाखा द्वारा गत 23 जनवरी को आयोजित एक विराट अंतर्राष्ट्रीय कवि सम्मेलन का उद्घाटन करते हुए, मानव संसाधन मंत्री श्री राजमंगल पाण्डेय ने कहा, "कवियों ने ही सदा देश को आगे बढ़ाया है। यदि वे अपनी चेतना जगाए रखें तभी वर्तमान समस्याओं का हल हो सकता है।" उन्होंने इस अवसर पर नौएडा की एक चिर प्रतीक्षित मांग को पूरा करते हुए घोषणा की कि शीघ्र ही यहां एक महाविद्यालय की स्थापना की जाएगी। इस अवसर पर नौएडा प्राधिकरण के अध्यक्ष श्री रावल ने कालेज के लिए निःशुल्क जमीन देने का आश्वासन दिया।

इससे पूर्व उत्तर प्रदेश समाज दिल्ली की नौएडा शाखा के अध्यक्ष और केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय भारत सरकार के पूर्व निदेशक श्री राजमणि तिवारी ने अपने स्वागत भाषण में नौएडा वासियों की समस्याओं पर प्रकाश डालते हुए समाधान भी सुझाए। शाखा के मंत्री और शिक्षा मंत्रालय के पूर्व शिक्षा सलाहकार एवं निदेशक (भाषाएं) श्री सोमदत्त दीक्षित ने नौएडा शाखा के गठन एवं स्थानीय समाज से सम्बन्धित समस्याओं के समाधान तथा सांस्कृतिक विकास में इस नए मंच की भूमिका का उल्लेख किया।

प्राधिकरण अध्यक्ष श्री प्रमोद चन्द्र रावल ने इस अवसर पर प्रकाशित स्मारिका का विमोचन किया। प्रतिष्ठित गीतकार श्री रमानाथ अवस्थी की अध्यक्षता और श्री राधेश्याम प्रगल्भ एवं श्री सोमदत्त दीक्षित के संचालन में भारत के कोने-कोने से तथा विश्व के कुछ देशों से पधारे कवियों ने अपनी कविताओं से श्रोताओं को मुग्ध किया।

कवि सम्मेलन में विदेशी कवियों में से वियतनाम के श्री थाई, इटली के श्री सविनो, माली (अफ्रीका) के श्री मोदी बोकुम तथा पोलैण्ड के प्रोफेसर विस्की जैसे हिन्दी कवियों को श्रोताओं ने मंत्र मुग्ध होकर सुना। भाग लेने वाले अन्य कवि थे: सर्वश्री गोपाल दास नीरज, मधुर शास्त्री, डा. रवीन्द्र भ्रमर, कन्हैया लाल नन्दन, डा. बुद्धि नाथ मिश्र, डा. शेर जंग गर्ग, शिशुपाल सिंह निर्धन, श्रीपाल सिंह क्षेम, संतोषानन्द, श्रीमती माधवी लता शुक्ल, डा. अंजना संधीर, डा. सरोजनी प्रीतम, डा. शशि तिवारी, डा. कुंवर बेचैन, डा. बरसाने लाल चतुर्वेदी, सोमदत्त दीक्षित, अशोक चक्रधर और गोविंद व्यास आदि।

सोमदत्त दीक्षित

ए-133 सेक्टर 27 नौएडा-201301



लघुकथा लेखक सम्मेलन

कला भारती संस्थान और हिन्दी मासिक 'अवध पुष्पांजलि' के संयुक्त तत्वावधान में पिछले दिनों उत्तर प्रदेश के बस्ती शहर में एक विशाल लघुकथा सम्मेलन का आयोजन किया गया। इस का उद्घाटन जिला अधिकारी श्री प्रेमनारायण सिन्हा ने किया। उन्होंने इस मौके पर श्री नरेश चन्द्र चतुर्वेदी द्वारा सम्पादित पुस्तक 'हिन्दी के समर्पित साधक रमाकान्त श्रीवास्तव' का विमोचन भी किया।

सम्मेलन में देश के विभिन्न भागों से आए लघुकथा लेखकों—रूपनारायण अनुराग, पवन कुमार पवन, राजेन्द्र प्रकाश वर्मा, सुश्री कविता सिंह, सुश्री पूनम सिंह, अशोक मिश्र, हरिनाथ उपाध्याय, राजेन्द्र परदेसी और शंकर शेष आदि ने अपनी रचनाओं का वाचन किया।

इस सम्मेलन के दूसरे सत्र में नेहरू युवा केन्द्र बस्ती के कलाकारों ने रंगारंग सांस्कृतिक कार्यक्रम पेश किया। तीसरे सत्र में लघुकथा के स्वरूप, स्थिति एवं रचना-धर्मिता विषय पर एक परिचर्चा का आयोजन किया गया।

इस मौके पर कुछ सुपरिचित लघुकथाकारों श्री चित्रेश, रामयतन प्रसाद यादव, अशोक मिश्र, हनुमान मिश्र, सुश्री पूनम सिंह आदि को सम्मानित भी किया गया। □



राष्ट्रीय पत्रकार सम्मेलन

हिन्दी-पत्रकारिता ने स्वाधीनता-संग्राम को घर-घर पहुंचाया और राष्ट्रीय-मानवीय चेतना एवं चिंतन से राष्ट्रीय जनमानस को ओतप्रोत किया। किन्तु स्वाधीनता के उपरांत हिन्दी-पत्रकारिता अपने कर्म-पथ से अलग-थलग पड़ती चली गई। परिणामतः लोकतंत्र की शक्ति का यह चतुर्थ पाया भी आज नितांत दयनीय अवस्था में पहुंच गया है। ऐसी स्थिति में हिन्दी-पत्रकारिता के समुचित विकास की आवश्यकता राष्ट्रीय परिपेक्ष्य में कहीं अधिक बढ़ गई है। संभवतः ऐसी ही भावनाएं रही होंगी 'हिमाचल पत्रकार संसद, सोलन' की। जिसने पिछले दिनों अपने प्रथम राष्ट्रीय सम्मेलन का आयोजन हिमाचल प्रदेश के प्रवेश द्वार कहे जाने वाले शहर सोलन में किया। इस समारोह में देश के कई राज्यों के युवा-उत्साही पत्रकारों ने भाग लिया। दो दिन का यह सम्मेलन चार सत्रों में चला।

समारोह की अध्यक्षता कर रहे सुप्रसिद्ध साहित्यकार, पद्मश्री डा. श्याम सिंह शशि ने कहा कि "मिशनरी पत्रकारिता का आज पूरी तरह व्यवसायीकरण हो चुका है। इससे पत्रकारिता के मूलभूत सिद्धांतों को सर्वाधिक हानि पहुंची है और पीत-पत्रकारिता ने हमारे मूल्यों को सर्वत्र क्षत-विक्षत किया है। ऐसी स्थिति में अत्यावश्यक है कि मिशनरी पत्रकारिता का समुचित संवर्धन और परिमार्जन देश के युवा पत्रकार करें। अपने दायित्वों को समझें तथा किसी भी प्रकार के प्रलोभनों से अपने को अलग रखकर राष्ट्र, समाज और मानवीय संवेदना को आवश्यक संरक्षण प्रदान करें।"

दैनिक 'ट्रिब्यून' के संपादक श्री विजय सहगल ने कहा "युवा पत्रकार अपने मन की कंठों से मुक्त होकर कार्य करें। संपादकों के सामने कितनी और किस प्रकार की कठिनाइयां होती हैं, यह भी समझें और पूर्वाग्रहों को मन से निकाल दें।"

स्वागत-समिति की अध्यक्ष मेजर कृष्णा मोहिनी ने डा. शशि की साहित्यिक सेवाओं का विस्तार से उल्लेख किया और तालियों की गड़गड़ाहट के बीच डा. शशि का अभिनंदन किया। हिमाचल पत्रकार संसद के संयोजक श्री विजय कुमार शर्मा ने संचालन

किया। समारोह में कई प्रस्ताव भी पारित किए। कई वरिष्ठ पत्रकारों ने युवा पत्रकारों को दिशा देने का प्रयास किया। युवा पत्रकारों ने अपनी समस्याओं और आकांक्षाओं को भी अपने-अपने स्तर पर प्रस्तुत किया। श्री शरद कुमार 'शरद' तथा धर्मेन्द्र त्यागी ने सुमधुर काव्य-पाठ भी किया। उपस्थित पत्रकारों में श्री देवपांथी मनमोहन, कुमार राज, चांदरानी शर्मा आदि ने भी विचार प्रकट किए। इस अवसर पर प्रकाशन विभाग की पुस्तकों और पत्रिकाओं की प्रदर्शनी का आयोजन भी किया गया जिसका उद्घाटन मेजर कृष्णा मोहिनी ने किया। □

धर्मेन्द्र त्यागी

टाइप-बो, बी-26/368

डी. एम. एस. कालोनी, हरिनगर घंटाघर,
नई दिल्ली-110064

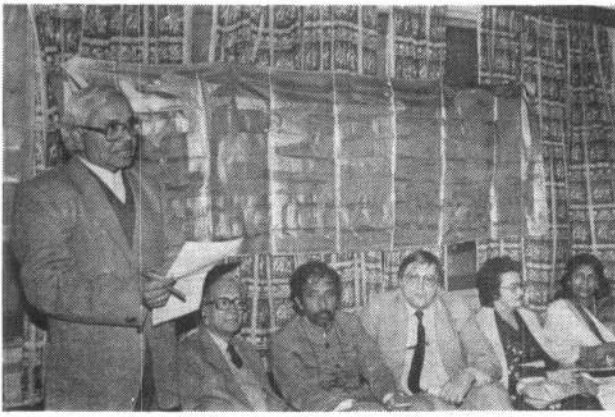
'श्रद्धा के फूल' का लोकार्पण

केन्द्रीय हिन्दी संस्थान, नई दिल्ली के सभागार में 2 दिसम्बर 90 को 'मां' को समर्पित 'श्रद्धा के फूल' का लोकार्पण पद्मश्री डा. श्याम सिंह शशि निदेशक, प्रकाशन विभाग द्वारा किया गया। राधेश्याम प्रगल्भ ने गोष्ठी की अध्यक्षता की। डा. शशि ने कहा कि श्री हरीसिंह पाल द्वारा लिखित तथा स्व. रानीदेवी को समर्पित, यह रचना, हिन्दी साहित्य की संभवतः पहली रचना है जो जन्मदात्री मां को समर्पित है। राधेश्याम प्रगल्भ ने कहा कि इस पुस्तक को जो भी पढ़ेगा, उसे मां का स्मरण हो जाएगा। इस अवसर पर एक गोष्ठी भी हुई जिसमें राधेश्याम प्रगल्भ, रामदास शास्त्री के अतिरिक्त डा. जयपाल तरंग, उर्मिल सत्यभूषण, अनुसूया अनु, डा. इंद्रसेन, डा. दयाशंकर मिश्र, रामसिंह निम, रमेश बंगालया और महावीर सिंह दिनकर ने सुंदर पर्व एवं सामयिक काव्य पाठ प्रस्तुत किया। □



बिहार के छपरा जिले की साहित्यिक एवं सांस्कृतिक संस्था 'सप्तस्वर' ने गणतंत्र दिवस के अवसर पर जिले के विभिन्न भागों में साक्षरता और देशभक्ति के गीतों का रंगारंग कार्यक्रम प्रस्तुत किया।

ये गीत श्री बैकुंठनारायण श्रीवास्तव ने लिखे हैं।



संस्कृति कविता का मूलाधार है

पिछले दिनों 'लेखनी' (नई दिल्ली) संस्था द्वारा केवल सूद की कविता पुस्तक 'कुछ और सोचने दो' पर एक परिचर्चा संगोष्ठी राजस्थान सूचना केन्द्र में आयोजित की गई। गोष्ठी की शुरुआत कवि के काव्य-पाठ से हुई। गोष्ठी की अध्यक्षता करते हुए सोवियत संघ के सुप्रसिद्ध कवि, विद्वान और भारतविद् अलेक्सांदर सेंकेविच ने कहा कि कविता का जन्म संस्कृति से होता है। आज के माहौल में कविता में प्रगतिशील और अप्रगतिशील का भेद कोई अर्थ नहीं रखता।

नाटककार कवि प्रताप सहगल की मान्यता थी कि केवल सूद की कविताओं में सहमे हुए आदमी की तस्वीर उभरती है। उन्होंने कविता के संस्कार आधुनिक परंपरा से ही ग्रहण किए हैं। ये कविताएं सरल और सहज होकर भी एक असर पाठक के ऊपर छोड़ती हैं। सुरेश धींगरा ने अपने आलेख में कहा कि ये कविताएं अतीत से उबरी हुई भविष्य के मायाजाल को तोड़ती कविताएं हैं। कवि की खोफजदा स्थिति भी उन्होंने रेखांकित की। अकविता के कवि जगदीश चतुर्वेदी ने 'कुछ और सोचने दो' के लिए लिखी अपनी भूमिका को निरस्त करते हुए केवल सूद के कवि को सरल और बच्चे जैसा कहा। उनके अनुसार कवि को तीसरी आंख भी पैदा करनी चाहिए।

साठोत्तरी पीढ़ी के जाने-माने कवि ललित शुक्ल ने कहा कि ये कविताएं ऊपर से अपनी जमीन से जुड़ी हुई लगती हैं। संभावनाओं की दृष्टि से ये कविताएं सोचने के लिए मजबूर करती हैं। नेपाल के कवि केदारनाथ व्यथित ने 'दर्दखाना' कविता को अखिल मानवता की कविता बतलाया। नेपाल के ही प्रख्यात कवि तुलसी दिवस ने कहा कि केवल सूद की कविता यथार्थ के सत्य से ही होकर गुजरती है। बलदेव वंशी की राय में 'धुआं' कविता कवि के पूरे कल्पना-विस्तार को अकेले ही बांधे है। □

ओम निश्चल

आर 4, बाणी विहार,
नई दिल्ली-110059

बाल कलरव-बाल कवि सम्मेलन

नई दिल्ली में 'बाल कलरव' संस्था ने इस वर्ष भी बाल कवियों का सम्मेलन हरिनगर के सरस्वती बाल मंदिर में किया। समारोह में उपस्थित 25 बाल कवियों ने अपनी कविताओं के माध्यम से पर्यावरण प्रदूषण, सांप्रदायिकता, आतंकवाद, आडंबर युक्त सामाजिक व्यवस्था, दहेज-प्रथा, राजनैतिक कलाबाजियां आदि के विरुद्ध प्रभावपूर्ण ढंग से अपनी भावनाओं को अभिव्यक्ति दी। बाल कवि सम्मेलन का मनोहारी संचालन छात्रा रुचि जैन ने किया।



इस अवसर पर समारोह की अध्यक्षता करते हुए सुप्रसिद्ध साहित्यकार श्री विष्णु प्रभाकर ने कहा कि "बाल कवियों की मौलिक अभिव्यक्ति में शब्दार्थ की ध्वनि स्पष्ट परिलक्षित है।" प्रभाकर जी ने शब्द और शब्दार्थ की व्याख्या करते हुए कहा कि "केवल स्कूली पढ़ाई से शब्द से आत्मसात नहीं हुआ जा सकता।" इस संदर्भ में उन्होंने कई प्रेरक प्रसंग सुनाए। संस्था की ओर से प्रभाकर जी का अभिनंदन भी किया गया। बाल कवियों को पुरस्कार भी प्रभाकर जी के हाथों से दिलाए गए।

विशिष्ट सान्निध्य प्रदान करते हुए लेखक-पत्रकार श्री सुभाष चंद्र सेतिया, साहित्यकार-कवि श्री धर्मेन्द्र त्यागी, श्री रत्न प्रकाश शील, डा. सरोजनी प्रीतम व सत्यप्रकाश बजरंग ने कहा कि आज समूचा विश्वमानव जिस शांति, सद्भाव और मानवीय एकता के लिए चिंतित है, बाल कवियों की कविताओं में वह संवेदना प्रभावी ढंग से प्रस्तुत हुई है और कहा जा सकता है कि आने वाली पीढ़ी में मानवीय संवेदना के संस्कार अपेक्षित और आकांक्षित-रूप में मुखरित हो रहे हैं। संस्था के वरिष्ठ पदाधिकारियों ने फूल-मालाएं और अंगवस्त्रम् पहनाकर उक्त अतिथियों को विशेष सम्मान प्रदान किया। समारोह का संचालन करते हुए संयोजक श्री रवीन्द्र कुमार गर्ग और विद्यालय के प्रधानाचार्य श्री गोविंद राम अग्रवाल ने संस्था की स्थापना तथा उद्देश्यों पर भी प्रकाश डाला।

ब्रजेश कुमार

आर जेड 388 कैलाशपुरी एक्स,
नई दिल्ली-110045



पालीवाल ने कहा कि कविताओं में अंतर्योजना का अभाव है और तात्कालिकता रचनात्मकता में ठीक से समा नहीं सकी है।

डा. तारकनाथ बाली ने कहा कि नरेन्द्र मोहन की कविता हिंसा का प्रतिकार करती है। डा. नरेन्द्र मोहन ने अपनी तीन कविताएं सुनाने के साथ-साथ श्रोताओं एवं वक्ताओं के प्रति आभार व्यक्त किया। गोष्ठी का संचालन डा. रत्नलाल शर्मा ने किया। □

हेमंत कुकरेती

23 जी. एल. बिल्डिंग रघुवरपुरा
गांधीनगर दिल्ली-110031

विचार और अनुभव का काव्यात्मक संतुलन

‘भारतीय लेखक संगठन’ के तत्वावधान में नरेन्द्र मोहन के कविता संग्रह ‘हथेली पर अंगारे की तरह’ के बहाने उनकी काव्य-यात्रा पर एक विचारोत्तेजक गोष्ठी का आयोजन 19 जनवरी को हंसराज कालेज सभागार में किया गया। अध्यक्ष पद से बोलते हुए डा. विजयेंद्र स्नातक ने नरेन्द्र मोहन की कविता में विचार की भूमिका पर प्रकाश डाला। उनका निष्कर्ष था कि विचार-पक्ष प्रमुख होने के बावजूद नरेन्द्र मोहन की कविता संवेदन से जुड़ाव के आधार पर संप्रेषणीय कविताएं हैं। इसमें ही उनकी सफलता निहित है।

डा. सुखवीर सिंह ने नरेन्द्र मोहन को विचार-कविता के प्रवर्तक के रूप में लेते हुए उनके कवि के विकास को रेखांकित किया। डा. ललित शुक्ल ने अपने आलेख में नरेन्द्र मोहन के बहुमुखी साहित्यिक व्यक्तित्व की चर्चा की। उन्होंने नरेन्द्र मोहन को वर्तमान विसंगतियों का ऐसा कवि कहा जिसके पास पर्याप्त विचार-बोध है।

चर्चा प्रवर्तन करते हुए डा. विनय ने कहा कि इन आलेखों में नरेन्द्र मोहन को सपने और एहसास का कवि सिद्ध किया गया है। और उनकी कविता को अनुभव और स्वप्नों के काव्यानुभव से उपजी कविता बतलाया है। दरअसल विभाजन एवं उसके बाद का राजनैतिक परिदृश्य नरेन्द्र मोहन की अभिव्यक्ति का मूल केन्द्र है।

डा. हरदयाल ने कहा कि नरेन्द्र मोहन की कविता समकालीन व्यक्ति के अनुभव की कविता है। वस्तुतः यह शहर की कविता है जिसमें बौद्धिक पक्ष प्रबल है। डा. गंगाप्रसाद विमल ने कहा कि के. जी. वर्मा ने ठीक ही कहा था सच से कवि मुक्त नहीं हो सकता। नरेन्द्र मोहन ने समकालीन स्थितियों से आहत होकर कविताएं लिखीं। उन्होंने एक सजग संवेदनशील बौद्धिक की तरह अपने समय को पहचानने का प्रयास किया। जगदीश चतुर्वेदी ने कहा कि कवि के यहां मानवीय संहार का नास्टेलिज्या है। सामाजिक चिंता और मृत्युबोध से क्षोभ होने के बावजूद आंतरिक गठन के अभाव की ओर जगदीश चतुर्वेदी ने संकेत किया। डा. कृष्णदत्त



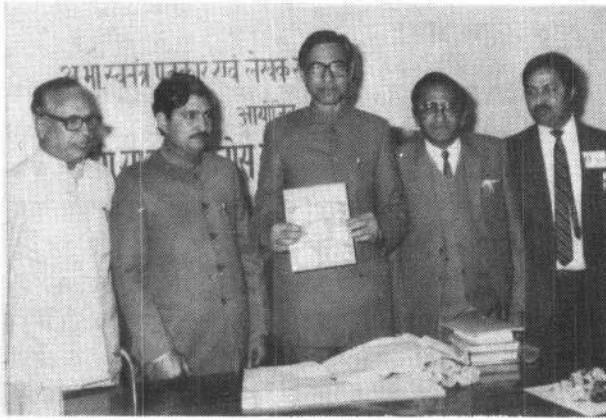
गुजराती और हिन्दी के साहित्य का समन्वय हो

हिन्दी साहित्य परिषद, अहमदाबाद की ओर से पिछले दिनों पालड़ी (गुजरात) में एक साहित्यिक एवं सांस्कृतिक समारोह का आयोजन किया गया। इसका उद्घाटन गुजरात के राज्यपाल डा. स्वरूप सिंह ने किया। उन्होंने परिषद के कार्यों की सराहना करते हुए गुजराती और हिन्दी दोनों के साहित्य के समन्वय की आवश्यकता पर बल दिया।

इस अवसर पर राज्यपाल महोदय ने श्री सुभाष भाटिया के शोध ग्रंथ ‘डा. लक्ष्मीनारायण लाल का रंगदर्शन’, मंजु भटनागर ‘महिमा’ के काव्य संग्रह ‘बोनसाई संवेदनाओं के सूरजमुखी’ का विमोचन भी किया। समारोह में डा. लक्ष्मीनारायण लाल के प्रसिद्ध नाटक ‘रातरानी’ का मंचन भी किया गया।

मंजु भटनागर

ई-508, बोरसली अपार्टमेंट,
खानपुर, अहमदाबाद-380001



अखिल भारतीय स्वतंत्र पत्रकार एवं लेखक संघ की ओर से गत 23 जनवरी को नेताजी सुभाष चन्द्र बोस की जयंती पर प्रकाशन विभाग के मुख्यालय पटियाला हाउस नई दिल्ली में एक समारोह का आयोजन किया गया। इस अवसर पर प्रकाशन विभाग के निदेशक डा. श्याम सिंह शशि ने नेताजी द्वारा समय-समय पर व्यक्त किए गए विचारों पर अंग्रेजी में एक पुस्तक "नेताजीज् कोटेशन" का लोकार्पण किया। चित्र में बाएं से प्रकाशन विभाग के संयुक्त निदेशक श्री श्रीपतिराव, आयोजक संस्था के महासचिव श्री दयानंद वत्स, डा. श्याम सिंह शशि और प्रोफेसर लक्ष्मीनारायण दुबे।

सूर्यास्त से पहले पर गोष्ठी

नई दिल्ली के राजस्थान सूचना केन्द्र में 'अलाव' की ओर से युवा कथाकार भगवान दास मोरवाल के नए कहानी-संग्रह 'सूर्यास्त से पहले' पर एक गोष्ठी का आयोजन हुआ। गोष्ठी की अध्यक्षता हंसराज रहबर ने की। मोरवाल की कहानियों पर सुरेश कुमार व सुभाष नीरव ने पर्वे पढ़े। प्रदीप तिवारी ने टिप्पणी की और डा. आनन्द प्रकाश ने लिखित टिप्पणी प्रस्तुत की। सुरेश कुमार ने पर्वे में कहा कि भगवान दास मोरवाल की कहानियाँ आदमी की भीतरी मजबूती को साहस प्रदान करके आत्म मंथन के लिए मजबूर करती हैं। सुभाष नीरव ने अपने पर्वे में कहा कि यह कहानी संग्रह समूचे जीवन यथार्थ के विविध आयामों को उद्घाटित करता है। शिल्प को लेकर लेखक को अतिरिक्त सतर्कता बरतने की जरूरत है।

डा. आनन्द प्रकाश ने अपनी संक्षिप्त टिप्पणी में कहा कि मोरवाल की कहानियाँ रूढ़िवाद पर चोट करती हैं। राजकुमार सैनी ने कहा कि भगवान दास मोरवाल को सरलीकरण के खतरे से बचना चाहिए और कलात्मक आतंक से भी। रमेश उपाध्याय ने कहा कि ये कहानियाँ सपाट हो गई हैं। इन कहानियों में द्वंद्व की आश्चर्यजनक रूप से अनुपस्थिति है।

गोष्ठी के अंत में पत्रकार अनन्त डबराल की मृत्यु पर मौन रखा गया। □

ब्रजमोहन

बारान्निकोव की जन्मशताब्दी मनाई गई

सागर : डाक्टर हरिसिंह गौर विश्वविद्यालय के शिक्षा संकाय के तत्वावधान में हाल ही में विश्वविद्यालयीन शिक्षा महाविद्यालय में प्रोफेसर लक्ष्मीनारायण दुबे के मुख्य आतिथ्य में अकादमीशियन एलेक्सेइ बारान्निकोव की जन्मशताब्दी मनाई गई है। कार्यक्रम की अध्यक्षता कला संकाय के अधिष्ठाता प्रो. आर. जी. प्राशर ने की।

डा. लक्ष्मीनारायण दुबे ने अपने व्याख्यान में बारान्निकोव के संघर्षमय जीवन का आकलन किया और उनको आर्यपुत्र, वोल्गा से गंगा को जोड़ने वाले केवट, ऋषि, भारतमित्र तथा भारतविद् बताया। डा. दुबे ने कहा कि सोवियत संघ में करोड़ों रूसियों को भारतीय शिक्षा, भारतीय साहित्य तथा भारतीय संस्कृति से परिचित कराने का सम्पूर्ण श्रेय बारान्निकोव को है। तुलसी के रामचरित मानस को दस वर्ष के लगातार परिश्रम तथा साधना के साथ रूसी भाषा में अनूदित करके, बारान्निकोव ने फादर कामिल बुल्के, जार्ज ग्रियर्सन, डा. एल. पी. तेस्सीतोरी, डा. जे. एन. कारपेंटर की समृद्ध परम्परा की श्रीवृद्धि की।

उन्होंने 62 वर्ष की कुल आयु में सोवियत संघ में भारतीय भाषाओं के अध्ययन-अध्यापन के जनक, रूसी-हिन्दी शब्दकोष के प्रवर्तक तथा प्राच्य विद्या के उन्नायक के रूप में ऐतिहासिक कार्य किए। □

विनय गोखले

12/4, शोध छात्रावास,
वि. वि. सागर, (म. प्र.)

शमशेर के रचना संसार पर विचार गोष्ठी

जनवादी लेखक संघ की स्थानीय ईकाई के तत्वावधान में सुप्रसिद्ध कवि श्री शमशेर बहादुर सिंह के अस्सीवें जन्म दिवस के उपलक्ष्य में सुप्रसिद्ध कथा समीक्षक श्री मधुरेश की अध्यक्षता में पिछले दिनों बदायूं में एक विचार गोष्ठी आयोजित की गई। श्री मधुरेश ने शमशेर के गद्य पर विचार प्रकट करते हुए कहा कि शमशेर के गद्य (निराला के शब्दों में) जीवन संग्राम की भाषा हैं।

इससे पूर्व डा. सुभाष वशिष्ठ ने अपने आलेख में शमशेर के जीवन प्रसंगों और संघर्षों का उल्लेख करते हुए बताया कि उनके काव्य में प्रयोगधर्मिता के साथ-साथ सामाजिक सरोकार भी बड़ी शिद्दत के साथ उभर कर आते हैं।

डा. सुभाष वशिष्ठ,

17, प्रोफेसर्स कालोनी,
श्याम नगर बदायूं (उ. प्र.)

पंछी ऐसे आते हैं

(पृष्ठ 17 का शेष)

पंछी ऐसे आते हैं और अपने ही जाल में फंस जाते हैं। ऐसी ही कहानी थी विजय तेंदुलकर के नाटक 'पंछी ऐसे आते हैं' की। पिछले दिनों इसे श्रीराम सेंटर के तलघर में ड्रामेटिक के बैनर के तहत खेला गया। इसके युवा निर्देशक सत्यजीत शर्मा से जब यह पूछा गया कि आपने इसे क्यों खेलना पसन्द किया? तो उन्होंने बताया कि नाटक में ऐसे परिस्थितियाँ हैं जिनसे जहाँ एक ओर हास्य का वातावरण पैदा होता है, वहीं उसमें गम्भीरता भी अपने आप में है।



अरुण सरनाइक नाम का युवक घूमता हुआ आता है और एक घर की खिड़की में बैठी सरस्वती को देख लेता है। केवल मनोरंजन या एक दिन के टिकने का ठिकाना ढूँढने के लिए वह अन्ना के घर का दरवाजा खटखटा देता है। उसका सामना अन्ना के युवा पुत्र बण्डा से होता है। बण्डा इस इंतजार में है कि कब बहन का विवाह हो तो उसे भी ब्रह्मचर्य पालन से छुट्टी मिले। लेकिन सरस्वती किसी को पसंद नहीं आती। वह हताश हो चुकी है अपनी नुमाइश करके। गुमसुम रहने वाली और अपने व्यक्तित्व से निराश सरस्वती में अरुण आत्मविश्वास फूंक देता है और आने वाला वर उसे पसंद कर लेता है। मां-बाप की चिंता दूर हो जाती है। अरुण से चिढ़ा रहने वाला बण्डा भी अरुण का लोहा मान लेता है। लेकिन जब पता चलता है कि सरस्वती तो केवल अरुण से ही विवाह करेगी तो सारे घर पर जैसे बिजली गिर जाती है। अरुण इन सब बातों से अनजान है। लेकिन इस समस्या से घबरा जाता है। भागने की सोचता है। अपने बारे में अपराधी होने की मनघड़त बातें करता है, फिर भी लोगों को विश्वास नहीं होता। अंत में जाल में फंसा पंछी जैसे आया था वैसे ही उड़ जाता है।

नाटक अंत तक दर्शकों को जकड़े रखता है। अरुण के रूप में संदीप वर्मा पूरे नाटक पर छाए रहते हैं। सरस्वती के रूप में शोफाली भूषण ने अपनी भूमिका को चमका दिया। जितेन्द्र अडवाणी व प्रवीन हसीजा ने अपनी भूमिकाओं को अच्छा निबाहा लेकिन अडवाणी झुंझलाहट दिखाने में ओवर एक्टिंग का शिकार हो गए। □

डा. प्रेमशरण शर्मा
2265 शादीपुर, नई दिल्ली-110008

कभी ध्यान नहीं दिया। उनको कई बार शांतिनिकेतन के परिसर में फलैट देने का प्रयत्न किया गया किन्तु उन्होंने शांतिनिकेतन के बाहर एक मेहतर की जीर्ण शीर्ण कच्ची झोपड़ी में रहना पसंद किया। झोपड़ी में बिजली नहीं थी। रात में ढिबरी अथवा लालटेन का प्रकाश अंधेरे को हरता था। इसी झोपड़ी में रहते राम किंकर ने कई कालजयी रचनाएं गढ़ीं और जीवन का सुख भोगा है। उन्होंने विवाह नहीं किया। शांतिनिकेतन में शिक्षा प्राप्त करने के उद्देश्य से प्रवेश करने पर उनके पिता ने दो वर्ष के अंदर ही उनका विवाह तय कर दिया था किन्तु कला साधना में नारी का बंधन कहीं बाधक न बन जाए, इस आशंका से राम किंकर ने फेरे नहीं फेरे किन्तु कालांतर में राधा रानी के साथ पति-पत्नी के रूप में रहने लगे।

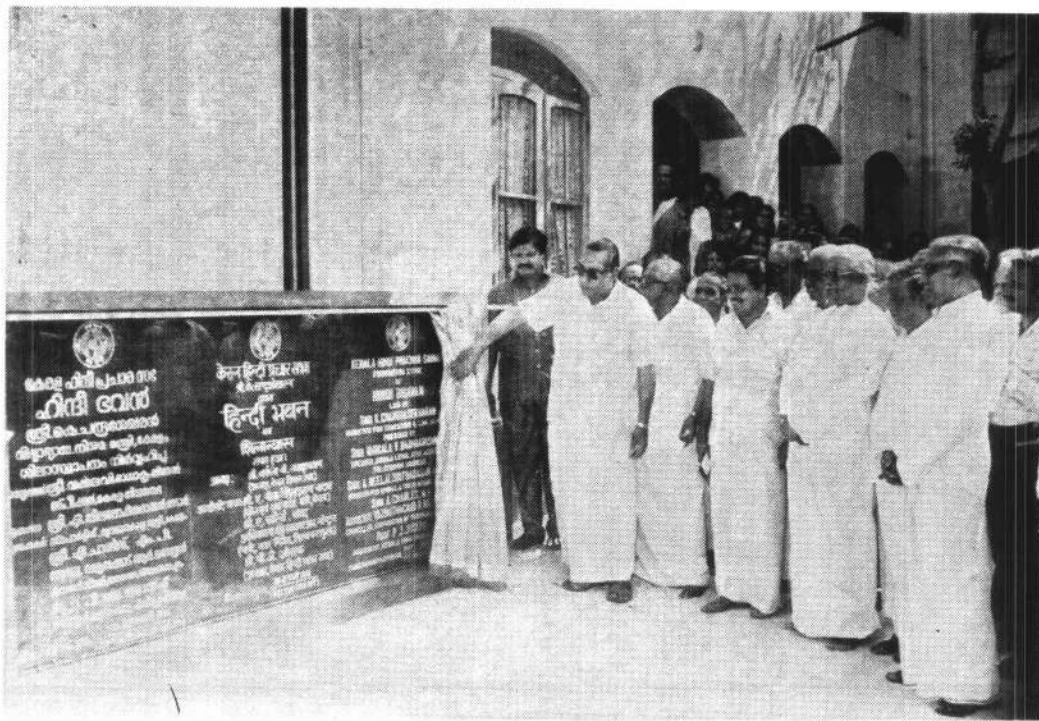
राम किंकर ने अपनी कृतियों की प्रदर्शनी आयोजित करने में कभी रुचि नहीं ली। उनकी पहली एकल प्रदर्शनी नई दिल्ली में 1942 में हुई और बाद में 1960 में कलकत्ता और शांतिनिकेतन में लगी। इसके बाद उनकी कृतियां देश-विदेश की कई प्रदर्शनियों में देखने को मिलीं। उनकी अधिकांश कलाकृतियां अब दिल्ली के राष्ट्रीय आधुनिक कला वीथि में संग्रहित हैं। उसमें से 260 कृतियों की प्रदर्शनी वीथि ने नवंबर 1990 में लगाई। राम किंकर को औपचारिक बातचीत में कभी मजा नहीं आया इसलिए उनके केवल तीन इंटरव्यू लिए जा सके हैं। 1976 में ललित कला अकादमी ने उनको अपना फैलो निर्वाचित किया। कई और संस्थाओं के भी वे सदस्य रहे।

छोटे कद और गठीली काठी के राम किंकर के चेहरे पर 70 के पार हो जाने पर भी झुर्रियों के निशान नहीं थे यद्यपि सिर के सारे बाल सफेद हो चुके थे और अधिकांश दांत निकाले जा चुके थे। सहज भाव से मुस्कराते चेहरे पर बड़ी आंखों का अपना ही निराला जादू था। खुलकर हंसते और गाते थे। मृदुल भाव से बातचीत करते थे। उल्लासभरा उनका जीवन था किन्तु यह कब तक चलता। शराब ने सब कुछ बरबाद कर दिया। मानसिक रूप से पहले ही विक्षिप्त थे। समय पर शरीर भी जवाब देने लगा। 1978 में राम किंकर को दिमागी व्याधियां लग गईं। 1980 की दूसरी तिमाही के शुरू में कलकत्ता के एक अस्पताल में इलाज के लिए उन्हें भर्ती किया गया। 31 जुलाई को दिमाग की नस फट गई। पहली और दूसरी अगस्त की मध्य रात्रि को आंखें मूंद गईं। राम किंकर के पार्थिव शरीर को कलकत्ता से शांतिनिकेतन ले जाया गया, जहां उनका अंतिम संस्कार हुआ। □

27, मैत्रेयी एपार्टमेंट्स

ए-3, पश्चिम बिहार, नई दिल्ली-110063





तिरुवनन्तपुरम में हिन्दी भवन का शिलान्यास

केरल में हिन्दी प्रचार व विकास संबंधी विविध योजनाओं के प्रभावी कार्यान्वयन के लिए केरल हिन्दी प्रचार सभा ने तिरुवनन्तपुरम में एक हिन्दी भवन की स्थापना करने की योजना बनाई है। इसके लिए निर्मित होने वाले चौ मंजिले भवन का शिलान्यास सभा के तिरुवनन्तपुरम परिसर में केरल सरकार के शिक्षा मंत्री श्री के. चन्द्रशेखरन ने किया। उन्होंने इस बात पर संतोष प्रकट किया कि शिलान्यास संबंधी सूचना-फलक पर शिलान्यास करने वाले का नाम प्रार्थेशक भाषा मलयालम, राष्ट्रभाषा हिन्दी और अंग्रेजी में उत्कीर्ण किया गया है जो त्रिभाषा सूत्र का प्रतीक है। उन्होंने कहा कि जिस प्रकार केरल ने त्रिभाषा सूत्र को कार्यान्वित किया है उसी प्रकार भारत के इतर प्रान्त भी उस पर अमल करें तो भावात्मक एकता को अधिक प्रश्रय मिलेगा।

अध्यक्षीय भाषण में केरल विधान सभा के अध्यक्ष श्री वर्कला वी. राधाकृष्णन ने कहा कि न हिन्दी प्रेम से इतर भाषाओं की प्रगति में बाधा पड़े और न मातृभाषा प्रेम राष्ट्रभाषा की प्रगति में बाधक हो। संविधान के अनुसार जो भी जनतंत्रात्मक शासन तंत्र बनेगा उस में हिन्दीभाषियों की संख्या अधिक रहेगी ही। हिन्दी भाषा को वे यदि राष्ट्र के नवोत्थान का माध्यम न बना कर निजी राजनीतिक सत्ता को दृढ़तर बनाने का माध्यम बनाएं तो देश की भावात्मक एकता में बाधा पड़ सकती है।

केरल सरकार के खेल एवं युवा कार्य मंत्री श्री ए. नीललोहितदासन नाटार ने इस धारणा को निर्मूल बताया कि अंग्रेजी एकमात्र विश्वभाषा है। रूसी, चीनी, जर्मन जैसी इतर

विदेशी भाषाएं सीखने की सुविधा भी त्रिभाषा सूत्र के अंतर्गत दी जानी चाहिए खाड़ी क्षेत्र में नौकरी पाने के लिए अरबी फारसी का ज्ञान सहायक होगा।

सांसद श्री ए. चार्ल्स ने इस बात पर चिन्ता व्यक्त की कि हमारे जो नेता अंग्रेजी माध्यम स्कूलों के विरुद्ध बोलते हैं वे भी अपने बच्चों को अंग्रेजी माध्यम स्कूलों में दाखिल करते हैं। भाषा की समस्या जब उठती है तब संसद में उत्तर भारत और दक्षिण भारत दो ध्रुवों में बंट जाते हैं। उत्तर के स्कूलों में दक्षिण की भाषाएं सिखाने की दिशा में कोई प्रगति नहीं हो रही है। हिन्दी प्रदेश की घोर निरक्षरता दूर करने में केरल के हिन्दी उपाधिकारियों का उपयोग किया जा सकता है।

केरल हिन्दी प्रचार सभा के अध्यक्ष प्रो. पी. जे. जोसफ ने सभा के संस्थापक स्व. के. वासुदेवन पिल्लै की तपोनिष्ठ सेवाओं का अनुस्मरण करते हुए कहा कि उन्हीं के आदर्शों पर चल कर सभा दिन प्रतिदिन प्रगति कर रही है।

केरल हिन्दी प्रचार सभा के मंत्री एवं अखिल भारतीय हिन्दी संस्था संघ के कोषाध्यक्ष श्री एम. के. वेलायुधन नायर ने स्वागत भाषण दिया। सभा के उपाध्यक्ष श्री के. केशवन नायर ने कृतज्ञता प्रकट की। □

के. जी. बालकृष्ण पिल्लै
संपादक, केरल ज्योति,
केरल हिन्दी प्रचार सभा,
तिरुवनन्तपुरम

डाक तार पंजीयन सं. डी. (डी. एन.) 105 बिना पूर्व भुगतान के एन. डी. पी. एस. ओ., नई दिल्ली में पोस्ट करने के लिए लाइसेंस
यू (डी. एन.)-49 प्राप्त दिल्ली डाक आर. एन. 701/57
P. & T. Regd. No. D (DN)/105 Delhi Postal
Licenced U (DN)-49 to post without pre-payment at NDPSO, New Delhi R.N. 701/57

